रसायनशास्त्रान्तर्गत

नवलकथा

जिन के उर में चाह।
जिन्हें रसायन विद्या शिक्षा पाने में उत्साह !
स्वागत उनका दो शब्दों में सानुराग अथाह ॥

नवलकथा

रसायन-शास्त्रान्तर्गत नवलकथा

मूल लेखक

रा. ना. भागवत, एम्. ए., बी. एस्सी.

प्रोफ़ैसर ऑफ़् केमिस्ट्री और डायरेक्टर ऑफ़् दि डिपार्टमेंट ऑफ़् केमिस्ट्री
सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज, बम्बई.

अनुवादक

गजानन जागीरदार, बी. ए.

प्रकाशक

जयवंत मोरेश्वर माहीमकर, बी. ए.

हिंद प्रिंटिंग वर्क्स, गिरगाम, बम्बई नं. ४

प्रथम संस्करण

१९४०

प्रति—संख्या २०००

मुद्रक

जयवंत मोरेश्वर माहीमकर, बी. ए.,

हिंद प्रिंटिंग वर्क्स, राजबाग स्टेट,

कांदेवाड़ी वेस्ट सब्-स्टेशन के सामने

गिरगाम, बम्बई नं ४.

भूमिका

एक बड़े विद्वान ने कहा है कि किसी पुस्तक का मूल्य उस की भूमिका से प्रगट होता है। यह ठीक ही है; लेकिन कोई भूमिका पढ़े तब न ? हमारे कितने पाठक भूमिका की ओर ध्यान देते हैं ? शायद ही कोई ऐसा करता होगा। किंतु यदि भूमिका न लिखी जाय तो मुझ पर आज तक की रूढ़ि के विरुद्ध जाने का दोष लगाया जायगा; और मैं ऐसा करने भी क्यों लगा ?

आज का युग यांत्रिक और बहुत कुछ रासायनिक है। हमारी नित्य–उपयोगी वस्तुओं के पीछे प्राय: कोई न कोई रासायनिक क्रिया अवश्य होती है। अतएव यह जानना हमारा कर्तव्य है कि विज्ञान ने हमारे लिये क्या क्या सुविधाएँ निर्माण की हैं, और कर रहा है। इस ज्ञान से कितने ही भ्रम दूर हो जायँगे, और आज जो सुविधाएँ हमारे लिये उपलब्ध हैं उन के निर्माण के निमित्त क्या क्या परिश्रम किये गये हैं एवं किन किन विभूतियों को कैसा कैसा त्याग करना पड़ा है, यह जानने से हम उन के सदा के लिये उपकृत रहेंगे। यही सोचकर इन नवलकथाओं को जनता के सामने लाया जा रहा है। आज तक इस प्रकार के जो थोड़े बहुत यत्न किये गये हैं वह या तो बिखरे हुए हैं या अधूरे हैं। भिन्न २ शास्त्रों में क्या क्या उथल पुथल हो रही है इस का, संकलित रूप में निर्देशन, मेरी समझमें, हिन्दी भाषा में और किसी ने भी नहीं किया है।

नित्य के व्यवहार में, या भिन्न २ शास्त्रों में, और व्यवसायों में रसायन–शास्त्र की जो उपयोगिता है उस का निर्देशन करना ही

इस पुस्तक का उद्देश्य है। वैसे तो सभी शास्त्रों का महत्त्व अपनी अपनी जगह पर है ही, किंतु मैं ने अपने लिये, रसायन–शास्त्र को ही चुन लिया है। इस का कारण यह है कि अन्य विषयों को इस विषय के साथ मिलाकर खिचड़ी बनाना मुझे अच्छा नहीं लगता। तथा, मेरे विचार से, किसी विषय को सहल से सहल रूप में प्रतिपादन करने के लिये उस विषय पर संपूर्ण प्रभुता एवं सशास्त्र और सतर्क विचार करने की पात्रता होना बहुत ही आवश्यक है।

यदि इन कथाओं को पढ़ कर अन्य शास्त्रों के विद्वानों को इसी प्रकार की पुस्तकें अपने अपने विषय पर लिखने की इच्छा हो जाय तो मैं अपने को बहुत कुछ यशस्वी समझूंगा। इतना ही नहीं किंतु हिन्दी भाषा की एक न्यूनता इस प्रकार दूर हो जायगी।

सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज,
बम्बई. } रा. ना. भागवत.

———o———

दो शब्द ।

विज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों के इस चरमोन्नति काल में हम सर्वत्र यही सुनते हैं कि जो बात विज्ञानसिद्ध है वही हमें ग्राह्य हो सकती है, जो बात इस प्रकार से 'कसौटी पर कसी हुई सो' सिद्ध विदित नहीं होती उस के सम्बन्ध में लोग यही कह बैठते हैं कि "हज़रत, यह वैज्ञानिक युग है, इस युग में आप हम को यह न मानवाइये कि पत्थर पर भी जोंक लग सकती है।"

विज्ञान के इस सार्वत्रिक राजशासन काल में, विज्ञान की इस सार्वत्रिक लोकप्रियता के समय में हमने अब तक क्या काम किया है? जहाँ रुचि है, जहाँ भाव-प्रवाह है, वहाँ भी कार्य करना अशक्य है, यह बात कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता। पर जब अब तक हमने विज्ञान सम्बंधी साधारण ज्ञान प्रसार के लिये भी, भारत में, यथोचित प्रबंध नहीं किया है, तब हम आविष्कारों के सम्बन्ध में अपने देश के नौ-निहालों से क्या आशा कर सकते हैं। इसी लिये हमारा देश विज्ञान और आविष्कारों के सम्बन्ध में बहुत पिछड़ा हुआ है।

आवश्यकता इस बात की है कि बालकों में, और सर्व साधारण जनों में, विज्ञान की प्यास और रुचि पैदा की जाय। इस के लिये प्रान्तीय भाषाओं में हमें ठोस सामग्री पुष्कल परिमाण में पैदा करनी होगी। किन्तु इन दिनों हमारी प्रान्तीय भाषाओं में विज्ञान विषयक साहित्य अति स्वल्प ही है। हमारे देश के सामयिक पत्रों में भी विज्ञान विषयक ऊहापोह को वह स्थान नहीं मिला है जो उन्नत देशों के सामयिक पत्रों में उसे मिल रहा है। फिर आधिकारी जनों द्वारा लिखित साधिकार सामग्री की बात चलाना ही व्यर्थ है।

कुछ काल से शिक्षालयों में देशीभाषाओं के माध्यम द्वारा विज्ञानका ज्ञान प्राप्त करने और परीक्षाओं के समय देशीभाषाओं में प्रश्नपत्रों के उत्तर देने के लिये सुभीते दिये जाने लगे हैं। इस तरह देशी भाषाओं में अधिकारपूर्वक प्रणीत पुस्तकों की आवश्यकता और भी बढ़ गयी है।

शिक्षालयों में, इस समय भी, न्यूनाधिक वैज्ञानिक शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य है; पर सुना जाता है कि हमारे विद्यार्थीगण, अधिकांशतः इस को शुष्क और नीरस विषय मानते हैं। विद्वज्जनों का मत है कि यह शुष्कता और नीरसता, एक बहुत बड़ी हदतक, उस पद्धति से चिमटी हुई चीज़ है जिस को हमने ज्ञानप्रसार का साधन बनाया है। अन्यथा विज्ञान तो बहुत ही रोचक विषय है। अत: इस विषय को रोचक रीतिसे उपस्थित करना आवश्यक है।

हमारे देश में जिन विज्ञानाचार्यों ने, शिक्षापद्धति से चिमटी हुई इस नीरसता को मिटाकर, सरसता लाने का प्रयत्न किया है, उन में इस पुस्तक के प्रणेता एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। और उन के द्वारा प्रणीत वैज्ञानिक साहित्य में यह 'नवलकथा' भी एक विशिष्ट स्थान रखती है।

मराठी भाषा में इस का जितना आदर हुआ है उस की तुलना, इस प्रकार के साहित्यक्षेत्र में, अन्यत्र मुश्किल से मिलेगी। अब यह उपयोगी पुस्तक, आचार्य रा. ना. भागवत के हिन्दी भाषा प्रेम और वैज्ञानिक ज्ञानप्रसारोत्साह के फलस्वरूप, हिन्दीरूप ले रही है।

हम आचार्य भागवत का उपकार मानते हैं कि उन्होंने इस पुस्तक को, प्रकाशित करने से पूर्व, हमें भी दिखालेने की कृपा की है। इतना ही नहीं, सामान्यतः और सिद्धान्ततः, अन्य विद्वानों

से अपनी पुस्तकों में भूमिका या प्रस्तावना लिखाने के विपक्ष में रहते हुए भी, उन्होंने हमें परिचयात्मक दो शब्द लिख देने का अवसर भी दिया है। इस के पूर्व, बड़े से बड़े विद्वान और प्रख्याति-लब्ध मित्रों के सहयोग सुलभ रहते हुए भी, उन्होंने अपने किसी अंगरेज़ी या मराठी ग्रन्थ में किसी से भूमिका नहीं लिखाई।

एक कारण ऐसा करने का यह भी है कि आचार्य भागवत को प्रशंसा और प्रख्याति से कतराते रहने की आदत है। और भूमिका या प्रस्तावना में, लेखक और उस की रचना के सम्बन्ध में कुछ न कुछ सामग्री तो इस प्रसार की समाविष्ट हो ही जाती है। पर उन्होंने हमारी यह बात मानली है कि हिन्दी में पुस्तक प्रकाशित करते समय परिचयात्मक कई पंक्तियाँ दा जायँ तो अच्छी बात है।

बम्बई में रहते हुए अबतक जिन महाराष्ट्र विद्वानों से परिचय और प्रेम हमें मिला है उन में दो सज्जनों के नाम स्मृतिपटलपर सदा अंकित रहेंगे। और हिन्दी साहित्य सेवा सम्बन्धी इस ओर के इतिहास में भी यह दोनों, प्रसंगप्राप्त, व्यक्ति अमर रहेंगे। इन में एक महाराष्ट्र के सुप्रसिद्धतम पत्रकार काका साहेब खाडिलकर हैं जिन के प्रेम और सहयोग से बम्बई में सर्व प्रथम सफल हिन्दी दैनिकपत्र "स्वाधीनभारत" का जन्म हुआ था, और दूसरे आचार्य भागवत हैं जो इस प्रान्त से सर्व प्रथम सुपुष्ट वैज्ञानिक साहित्य देने का श्रीगणेश, इस "नवल कथा" के साथ, कर रहे हैं।

जैसा कि हम ऊपर की कतिपय पंक्तियों में बता चुके हैं, हम ने इस पुस्तक के प्रूफों को साद्योपान्त पढ़ा है। इस के साथ ही मूल ग्रन्थ के पत्रों का आलोड़न भी हम कर गये हैं। आचार्य श्री. भागवत हमें यह इजाज़त नहीं देंगे कि, निर्दिष्ट विषय के लिये

प्रदत्त, इन दो चार पृष्ठों के सीमित स्थान का उपयोग, हम, समालोचनात्मक अथवा प्रशंसात्मक निबंध के रूप में कर डालें; और वास्तव में ऐसा करना, रीति तथा नीति दोनों की दृष्टि से, हमें अभीष्ट भी नहीं है। हमें तो यहाँ हिन्दी भाषी जनता को, थोड़े शब्दों में, लेखक और उन की कृति का परिचय मात्र देना है।

पहली बात पुस्तक के सम्बन्ध में। आचार्य रा. ना. भागवत मराठी में न केवल अपनी स्वतंत्र भाषा शैली के ही मालिक हैं, वरन वह विषय विवेचन विधि में भी अपनी निजी विशेषता रखते हैं। यही नहीं, उन्हों ने जो कुछ लिखा है वह एक निश्चित नीति और स्वीकृत ध्येय को सतत दृष्टि में रखते हुए लिखा है। राजनीति को अति शुष्क और नीरस मानने वाले राजकुमारों को विष्णुशर्माने, पशुपक्षियों की कथा कहानियाँ सुना सुना कर राजनीति निपुण बना दिया था। यह चीज़ " हितोपदेश " के नाम से संसार में प्रसिद्ध है। आचार्य रा. ना. भागवत इसी सिद्धान्त को सामने रखकर अति सरल भाषा और रोचक रीति से रसायनशास्त्र के भीतर की कथा कहानियाँ इस पुस्तक में सुनाते चले गये हैं। यह चीज़ " रसायनशास्त्रान्तर्गत नवलकथा " कहलायेगी। आपने इस पटुता से लेखनी का संचालन किया है कि, नीरस माने गये विषय की इस पुस्तक को पढ़ते समय भी, एक बार शुरू करके अध्याय की समाप्ति से पूर्व श्वास लेने की इच्छा नहीं होती। अन्त में रसायनशास्त्र के अन्तर्गत प्रसंगों की, इन कई अध्यायों में इतनी बातें मालूम हो जाती हैं जितनी, दूसरी तरह कई पुस्तकें पढ़कर भी शायद ही मालूम हो पातीं। इतने पर भी मस्तिष्क में शैथिल्य और मन में अनुत्साह पैदा नहीं होता। इस तरह यह पुस्तक नीरसता से कतराने वाले विद्यार्थियों और साधारण जनों के लिये बहुत ही

उपयोगी है। हमारे देश में इस विधि के आचार्य अनादि काल से पैदा होते चले आये हैं। विष्णु शर्मा ने जिस तरह राजनीति को, पशु-पक्षियों की कहानी सुनाते हुए महामूर्खों और अबोधों के लिये भी सरल कर दिया है, उसी तरह गहनतम और अति निगूढ़ आध्यात्मिक विषयों को पुराणों के आचार्योंने अतिशय रोचक और सर्वसुलभ बना दिया है । इसी प्रकार के सिलसिले में आचार्य रा. ना. भागवत के प्रयत्न भी हैं । इस के लिये हम उन का अभिनंदन करते हैं।

हिन्दी अनुवाद में, उपर्युक्त तत्त्वों को ध्यान में रखकर ही पारिभाषिक शब्दों पर बहुत ज़ोर नहीं दिया गया है। जिन के लिये पुस्तक रची गयी है, उन की मनोदिशा, रुचि और पात्रता को ही लक्ष्य में, पदपद पर, रखा गया है।

इस तरह यह चीज़ भी, सरलता और रोचकता के साथ ही इस पुस्तक की एक और विशेषता बन गयी है।

आचार्य रा. ना. भागवत हिन्दी भाषियों के लिये अपरिचित और नये हैं। किन्तु इस बम्बई प्रान्त में उन्होंने पर्याप्त सुख्याति पाई है। बम्बई नगर के प्रसिद्धतम विद्यालय सेण्ट ज़ेवियर कॉलेज में, गत २० वर्षों से आप रसायन शास्त्र के मुख्य प्राध्यापक और डाय-रेक्टर हैं। आप के शिष्यों की संख्या थोड़ी नहीं है । तदतिरिक्त आप मराठी और अंगरेज़ी पत्रों में भी, अवकाश के अनुसार, अपने प्रिय विषय पर लिखते रहे हैं। आप रसायन शास्त्र के एम्. ए. और उद्भिज शास्त्र के बी. ए. हैं। भूगर्भ एवं खनिज शास्त्रों का भी आपने अध्ययन और अनुशीलन किया है। इन्हीं शास्त्रीय विषयों के अनुशीलन में, निश्चिन्त भावसे, आप लगे रहते हैं । वैज्ञानिक रंगाई और वस्त्रधवलीकरण (डाइंग एण्ड ब्लीचींग) के सिवा

केमिकल एन्जिनियरिंग की भी विशेष शिक्षा आपने प्राप्त की है। मेकनिक (यांत्रिक) एन्जिनियरिंग में भी आप पर्याप्त रूप में, सदक्ष हैं।

इन्हीं विषयों पर आचार्य भागवत गवेषणा पूर्ण निबंध सामयिक पत्रों में लिखते रहे हैं। अंगरेज़ी और मराठी में लगभग दर्जन भर पुस्तकें आपने लिखी हैं जिन का सार्वत्रिक रूपमें आदर हुआ है।

आप की लिखित, निर्जीव या अचेतन रसायनशास्त्र सम्बंधी तीन पुस्तकें बम्बई विश्वविद्यालय की बी. एस्सी. कक्षा के लिये स्वीकृत हैं, और पढ़ाई जाती हैं। इन के मूल्य क्रमशः ६, ४ और ६ रुपये हैं जिस से पुस्तकों का महत्व भी प्रकट होता है और आकार–प्रकार से पुष्ट होना भी सिद्ध होता है। इण्टर मीजियेट कक्षा के लिये भी आपने १ सामान्य रसायनशास्त्र ५), २ अधातु रसायनशास्त्र, (दो भाग) ४), और ३ धातु एवं उन के तत्व ४) नामक पुस्तकें लिखी हैं। इन का भी विश्वविद्यालयान्तर्गत कालेजों में प्रचार है।

मराठी भाषा में लेख तो आप सन् १९१८ ई० से ही लिखते आते हैं, जो प्रायः नित्योपयोगी वैज्ञानिक विषयों पर हा होते हैं। अवकाश के अभाव में लेखों का क्रम सन् १९२४ से सन् १९३४ ई० तक अवरुद्ध प्रायः होगया था; इस के बाद से वह पुनः पूर्ववत् जारी है।

आप ने वैदिक काल से लेकर महान अकबर के शासन काल तक से सम्बन्धित, अतीत कालीन भारतीय रसायन शास्त्र के विकास और इतिहास की विद्वत्ता पूर्ण छानबीन की है। इसी तरह ऐतिहासिक रसायन शास्त्र के सिलसिले में " अतीत भारत में धातु " विषय पर अतिशय शोध और गवेषणाभरित सामग्री एकत्र की है।

प्रयोगात्मक विषयों में भी आप ने पूरी दिलचस्पी ली है। बम्बई प्रान्त के उष्णजलाशयों के सम्बन्ध में छानबीन और गुण दोष विवेचनात्मक लेख आप का बहुत ऊंचा माना गया है। इसी तरह इस ओर मिलने वाले हरित शाक के सम्बन्ध में भी आपने छानबीन और परीक्षण पर्यवेक्षण पूर्वक ठोस सामग्री पेश की है।

यहाँ स्थानाभाव के कारण हम आप के कार्यों का विशद विवरण नहीं दे सकेंगे, पर हमारा ख़याल है कि इन थोड़ीसी पंक्तियों में आचार्य भागवत का परिचय आप को मिल जायगा।

मराठी भाषा में "रसायनशास्त्रांतील नवलकथा" नामक दो पुस्तकें (दो भाग) बहुमूल्य निधि के समान हैं। यह दोनों भी बम्बई विश्वविद्यालय में, पाठयक्रम और पुस्तकालयों के लिये, स्वीकृत ग्रन्थ हैं। इन में पहली पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया जा रहा है। दूसरा भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा। गुजराती में भी इन पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित होने वाला है; यह बात हमें मालूम है।

संक्षेप में, (आप चाहें तो इस को विस्तार में भी कह सकते हैं) यही आचार्य रा. ना. भागवत और उन की कृतियों का परिचय है। हमें आशा है कि हिन्दी में ऐसे कृतविद्य, विशेषज्ञ और प्रौढ़ अनुभवी वैज्ञानिक की इस रचना का यथेष्ठ आदर होगा।

ता. १०–४–१९४०. निरञ्जन शर्मा अजित

——०——

अनुक्रमाणिका

——o——

उपोद्घात

वैज्ञानिक विषय सामान्य जनता के सन्मुख क्यों और किस तरह रक्खे जायँ ?

वैज्ञानिक ज्ञान का विस्तृत रूप से प्रसार करना ही देश के उद्धार का प्रमुख साधन है, यह आज नये सिरे से बताने की कोई आवश्यकता नहीं। यह तो सर्वमान्य सत्य है। किंतु उस प्रसार की रीति उस देश की विशेष परिस्थिति पर निर्भर है। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि यदि इस ज्ञान का प्रसार करना हो तो भिन्न भिन्न शास्त्रों की रूपरेखा ऐसी सुलभता से जनता के सामने रक्खी जाय कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सके। ऐसा करते हुए यह बात ध्यान में रहे कि जनता को शास्त्रों में रोचकता भी मालूम हो तथा शास्त्रीय अचूकता भी बनी रहे। इस विधि से गहन से गहन विषय भी सरल बनकर जनता को आकर्षित करेंगे। उसी तरह साधारण जनता की दृष्टि में हितकारी वस्तुओं की उपयोगिता उनके उपयोग की विधि पर निर्भर है। अगर विधि सरल हो तो उपयोगिता अधिक समझी जाती है, और उस का प्रचार भी अधिक होता है। नये आविष्कारों का यदि उपयोग न किया जाये तो अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में मनुष्य या देश पिछड़ जाता है, यह हमारे देश की परिस्थिति से स्पष्ट मालूम हो रहा है। हम दूसरे राष्ट्रों से पिछड़ न जायें इसलिये देश में भिन्न–भिन्न शास्त्रों का सर्वसाधारण तक प्रसार होना आवश्यक है। तदनुसार, किस समय, किस प्रकार और किस उद्देश्य से, क्या क्या यत्न किये गये, उन का विवेचन यहाँ संक्षेप में करना उचित होगा।

सदा से धर्मगुरू और विद्वत्ता का अविनाभावी सम्बन्ध रहा है। बड़े बड़े ज्ञानी अपनी अपनी इच्छानुसार किसी न किसी विषय का अध्ययन सदा से करते आ रहे हैं । विशेषतः यूरोप में इन ज्ञानियों के अध्ययन का क्षेत्र आध्यात्मिक विषयों तक मर्यादित नहीं रहता था, किंतु भौतिक शास्त्रों का अध्ययन भी कई विद्वानों ने उतने ही उत्साह के साथ किया। यहाँ तक कि भौतिक शास्त्रों का अभ्यास विद्वत्ता की पहचान समझी जाने लगी और सर्वसाधारण जनता इस गहन विषय से प्रायः अनभिज्ञ रही। जनता को जान बूझकर अंधेरे में रखने के लिये धर्मगुरूओं के पास कई कारण थे। उनका उद्देश्य तो यह था कि लोगों के अज्ञान से लाभ उठाते हुए उन्हें "दैवी चमत्कार" दिखाकर उनपर प्रभाव डालना, जिससे उन के धर्म का प्रसार द्रुतगति से हो। चमत्कारों के साथ जनता की जिज्ञासा भी बढ़ गई और चिकित्सक व्यक्ति चमत्कारों का भेद खोलने में व्यग्र हो गये, साथ ही विज्ञान की ओर जनता की दृष्टि आकृष्ट हुई। इस खोज से ही रसायन–शास्त्र का निर्माण हुआ। किंतु इस समय यह समझा जाता था कि दैवी चमत्कार और मंत्रसिद्धि में निकट का नाता है। और मंत्र-सिद्धि का दूसरा रूप है–जादूटोना, अर्थात् हीन प्रकृतिसे सम्बन्ध; इसलिये इच्छा होते हुए भी चमत्कारों का वास्तविक रूप जानने का साहस बहुजन–समाज को न हुआ।

किंतु बाद में, अर्थात् सोलहवीं सदी ईस्वी में शास्त्रों के अभ्यास को दो कारणों से फिर नई प्रेरणा मिली। पहला कारण यह था कि तराजू, जो कि ईजिप्त की उन्नति के समय से विख्यात हो गया था, उससे बंधुता रखनेवाले कुछ और मापन–यंत्रों का आविष्करण उस समय हुआ, जैसे–थरमॉमीटर, बॅरॉमीटर, एअर–

पंप आदि। इन नये यंत्रों से वैज्ञानिक क्रियाओं में अचूकता आने लगी और प्रयोगों का विश्वसनीय रूप दृष्टि के सामने आने लगा। और उससे भी महत्वपूर्ण कारण यह हुआ कि इंग्लैंड में रॉयल सोसायटी, फ्रान्स में एकेडॅमी दि साइंस, और इटली में एकेडॅमी डेल सिमेंटो आदि संस्थाओं की देश देश में स्थापना हुई। विज्ञान देश–विदेश, अपना–पराया आदि भेद नहीं मानता, इसलिये इनमें आपस में विचार–विनिमय होने लगा और बहुत से कठिन प्रश्नों का हल सुगमता से मिलने लगा। एवं विज्ञान का प्रसार उतने ही वेग से बढ़ता चला गया।

इस १६ वीं शताब्दि के अंतिम काल पर यदि विचार किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि उस समय वैज्ञानिकों का ध्यान केवल शास्त्रीय विषयों पर ही न था किंतु प्रचलित समस्याओं की ओर भी उनकी दृष्टि थी। फिर भी ऐसे लोगों की संख्या बहुत न थी। इसीलिये इस शांतिमय वातावरण में न्यूटन के क्रांतिकारी संशोधन संसार को आजतक अचम्भे में डालने के लिये समर्थ हुए। इन संशोधनों का हमारे नित्य के जीवन पर क्या परिणाम हुआ या हो सकता है यह बाद में सुविख्यात फ्रेंच विद्वान वालटेयर ने लोगों को बताया। सारांश, वालटेयर ने न्यूटन के संशोधनों को वैज्ञानिक आवरण से निकाल, सर्वसाधारण जनता की पहुँच में ला रक्खा। अतएव सलॉं जैसे सरदार घरानों की समिति में भी वैज्ञानिक चर्चा होना एक सांप्रदायिक बात हो गई थी। इस चर्चा में स्त्रियाँ भी उत्साह से सम्मिलित होती थीं। इस प्रकार यदि वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार बहुत कुछ हो भी गया था फिर भी प्रचलित विचारों की रेखा उल्लंघन करना सहज बात न थी और वैज्ञानिक संशोधनों को केवल कुतूहल की दृष्टि से देखा जाता था। उनका

अभ्यास करने की प्रेरणा शायद ही किसी को होती होगी। जब तक फ्रान्स में राज्यक्रांति के डंके नहीं बजे और सरदारों की संस्थाओं का नाश नहीं हुआ तब तक यही परिस्थिति बनी रही।

परंतु ऐसी परिस्थिति के रहते हुए भी इसी समय में आंग्ल-वैज्ञानिक डार्विन ने अपनी "प्राणियों की उत्पत्ति-संहिता" (The Origin of Species) प्रकाशित करके पहले के सर्वमान्य मूलतत्त्वों को ज़ोर का धक्का लगाया और विचार-क्रान्ति की। परन्तु इस संहिता की ओर केवल ज्ञानपिपासा के लोभ से लोगों की दृष्टि नहीं जाती थी। इस ग्रंथ में कहीं २ ऐसी बातें लिखी थीं, जिनसे अबाधित और प्रमाणभूत माने हुए धार्मिक तत्त्वों का खण्डन होता था। ईसाई धर्म में प्रतिपादित 'मनुष्य की दैविक उत्पत्ति' की शिक्षा का विरोध ज़ाहिर होता था और जिस से जीवन का प्रश्न धर्म से अतिरिक्त है, ऐसा सहज ही समझ में आता था। इस मनुष्य की उत्पत्ति के वाद-विवाद में केवल वैज्ञानिक ही नहीं उतरे, परंतु जिनका विज्ञान से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं था, ऐसे सॅम्यूएल बट्लर जैसे कोरे लेखक भी इस क्षेत्र में दो २ हाथ खेले। ऊपर लिखे प्रसंग से जिन लोगों की विज्ञान के अभ्यास की तरफ दृष्टि पड़ी, वह केवल 'धर्म डूबा, धर्म गया' इस पुकार के विरुद्ध ज़ोरदार प्रतिक्रिया के कारण ही। यह गड़गड़ाहट कुछ ही दिनों में ठण्डी हो गयी।

यहं विज्ञानसम्बन्धी प्रेम अथवा जिज्ञासा जितनी प्रगट में गाढ़-निद्रित किंवा मृतवत् दिखाई पड़ती थी, अन्दर से उतनी ही सुलग रही थी। परंतु जब रसायनशास्त्रज्ञ **फ़ॅरडे**, पदार्थविज्ञानी **टिंडल**, प्राणीशास्त्रज्ञ **हक्सले** और गणितज्ञ **मॅक्स्वेल** आदि बड़े २ विद्वानों के व्याख्यान रॉयल इन्स्टिटयूट में होने लगे उस समय

विज्ञान–शास्त्र के सम्बन्ध में लोगों में पुनः चाव उत्पन्न हुआ और वेग से फैला। लोगों के झुंड के झुंड व्याख्यानों में आते थे। रॉयल इन्स्टिटयूट जैसी संस्था में विविध विषयों पर जो व्याख्यान होते थे, उस में पुरुष ही क्या, बहुत सी स्त्रियाँ भी आती थीं। इसी प्रकार अनेक तरह के व्यवसाय वाले लोग भी आते थे। यहाँ तक कि इन में कईबार कवि भी आ टपकते थे। उपरोक्त बड़े पण्डितों ने विज्ञानप्रचार की उत्तम रीति से भूमिका तैय्यार नहीं की ऐसा कौन कहेगा? इन लोगों के दिये हुये संचालन से विज्ञान के सम्बन्ध में जिज्ञासा फैलती गई। और इस को शान्त करने के लिये मानों शास्त्र–पारंगत वैज्ञानिक लेखक आगे आये और **थॉमसन** का इंट्रोडक्शन टु बायॉलजी; **लॅंकॅस्टर** का सायन्स फ्रॉम अॅन आर्मचेअर; **वेलस** का दी सायन्स ऑफ् लाईफ़, **जीन्स** का मिस्टीरिअस युनिव्हर्स, **एडिंगटन** का फ़िज़िकल वर्ल्ड, **क्राउथर** का सायन्स फॉर यू और **हॉगबेन** का मॅथेमॅटिक्स् फॉर मिलिअन्स वैसे ही सायन्स फॉर सिटिज़न्स जैसे उत्तम २ ग्रन्थ इसी प्रकार छोटे बच्चों के लिये क्रिस्मस् की छुट्टिओं में नेचर ऑफ थिंग्स, युनिव्हर्स ऑफ़ लाइट जैसे **ब्रॅग** के दिये हुये व्याख्यान आज हमें प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त रीतिसे प्रोत्साहित किया गया वैज्ञानिक ज्ञान और लोगों के अन्दर जागृत की हुई पिपासा अथवा जिज्ञासा के कारण विविध शास्त्रों पर सरल भाषा में लिखे हुए छोटे २ ग्रन्थों का प्रवाह बह निकला। परन्तु बात कितनी ही अच्छी क्यों न हो किसी मूर्ख आदमी का हाथ लगने से उसकी कैसी दुर्दशा नहीं होती? और ऐसा होने पर वह शनैः २ बिगड़ती हुई अन्त में निकृष्टावस्था को पहुँच जाती है। और इसी कारण आज अनधिकारी लोगों के लिखे हुए सरल भाषा के ग्रन्थों के बारे में अविश्वास मालूम

होता है। जो ग्रन्थ सामान्य जनता के लिये वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में लिखे हुए हैं वह सब मूल में निर्विवादरूपेण सत्य उतरेंगे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सभी लेख विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान और जिज्ञासा उत्पन्न करनेवाले होंगे, ऐसा नहीं है। उन में से बहुतों में तो केवल इन विषयों की मोटी २ बातों को लच्छेदार भाषा में प्रगट किया गया है और इस प्रकार से वह लोगों की जिज्ञासा को बढ़ाते हैं। यह पद्धति बहुत ही विघातक है। क्यों कि ऐसे स्वाध्याय से वैज्ञानिकों के लेख और अनुसन्धान के सम्बन्ध में और विज्ञान की उपयोगिता के विषय में सामान्य लोगों के मस्तिष्क पर क्या प्रकाश पड़ेगा यह दीखता ही है। जनता को शास्त्रसम्बन्धी विशेष ज्ञान कराने के लिये लिखे हुए पाठ उनकी समझ में आने योग्य सरल भाषा में, संक्षेप में, कथित बातों का ध्यान रखते हुए लिखे होने चाहियें। ऐसा करने से कार्य बहुत सरल हो जाता है।

विशेषतः भौतिकशास्त्र और उसमें से निकले हुए सामान्य जनोपयोगी विषय इस में सम्मिलित हों। आरम्भ में यद्यपि अधिक फल प्राप्ति नहीं दिखाई पड़ती, तो भी उनका उपयोग करने से समाज का सर्वाङ्ग हित अवश्यही होगा। शास्त्रों के उत्तरोत्तर बढ़ने से अपने रहन-सहन में बड़ा ही परिवर्तन हो गया है। इतना ही नहीं, परन्तु अपनी समाज की नैतिक मनोदशा ऐसे परिवर्तन के कारण बहुत ही उलटपुलट हो गई है। ऐसी दशा में वैज्ञानिक अनुसन्धानों का प्रकाश कर के उनकी क्या २ उपयोगिताएँ हैं, और वह अपनी समाज की उन्नति में किस प्रकार सहायक हो सकती हैं, यह बतलाना क्या वैज्ञानिकों का आदि कर्तव्य नहीं है? यदि ऐसा है, तो यह बातें

और ये अभ्यास सरल पाठों द्वारा सहज ही साध्य होंगे, यह तो स्पष्ट है। विविध शास्त्रों की द्रुतगति से होनेवाली आजकल की उन्नति के कारण और उन के अनुसन्धानों से होने वाले उपयोगी व्यवहारों में भिन्न २ शास्त्रों में एक प्रकार की एकांगीणता और भिन्न भाव दिखाई देता है, परन्तु यह ठीक नहीं है। इस दृश्य मात्र भिन्नता के पीछे एकता (unity) है, यह प्रतिपादन करना अथवा इसे सिद्ध करना क्या यह वैज्ञानिकों का पहला कर्तव्य नहीं है ? इसलिये वैज्ञानिक विषयों पर सुलभ वाचन पाठ लिख कर ऊपर से दिखाई देनेवाली भिन्न २ स्वरूपों वाली बातों का एक ही आदिशास्त्र में से उद्गम हुआ है, इतना ही क्यों, उनकी रचना भी एक ही विशेष प्रकार से विचार किये हुए सूत्रों के आधार पर हुई है, यह भी साथ ही समझा देना चाहिये।

वैज्ञानिक अनुसन्धान जैसा दिखाई देता है, वैसी निर्जीव वस्तु नहीं है। उसकी पीठ पर किसी न किसी वैज्ञानिक की जीवन–कथा रहती ही है। इस व्यक्ति ने मनुष्य देह की प्रकृति स्वभावानुसार होने वाले बन्धनों को न मानते हुए कैसी जीवट की बातें कीं, उस पर ऐसा करने से क्या २ प्रसंग आये और उसने इनका कैसे सामना किया और संसार के कल्याण के लिये किस प्रकार अपने देह तक का मोह नहीं किया, यह सब बातें एक जीवन–कथा बन जाती हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान और नये २ प्रतिपादित होने वाले तत्त्व और इनका समझना उन २ अनुसन्धान–कर्ताओं के इतिहास के बिना अर्थात् उन २ अनुसन्धानकर्ताओं के जीवन का अवलोकन किये बिना, मानो ऐसा जान पड़ता है, जैसे राम को अलग करके रामायण का पढ़ना।

वैयक्तिक प्रवृत्ति से शास्त्र अथवा विज्ञान एकदम पृथक् है, ऐसा कभी नहीं माना जा सकता। इतना ही नहीं वरन् इस के

कारण अनेकवार बड़ा वादविवाद उपस्थित हो जाता है, जैसे न्यूटन और लीबेन्स के बीच में हुआ था। इस विवाद के कारण शास्त्रप्रसार में बहुतसी रुकावटें भी पैदा हो जाती हैं। इतना होने पर भी समय २ पर होने वाले संघर्ष में से बहुत से नये २ तत्त्व और नये २ अनुसन्धान आज हम को प्राप्त हुए हैं। यदि ऐसा है तो वैज्ञानिक रहस्यों को व्यवहारिक रूप में जनता के सामने सरल भाषा में लिखे हुए पाठों द्वारा स्पष्ट करना चाहिये। आज सारे संसार में हड़कम्प उत्पन्न करनेवाली झगड़ालू वृत्ति को हमें यदि निःशेष करना है तो पहले राष्ट्रों की घमंड की अतिरेकी भावना को नष्ट करना आवश्यक है। इस भावना को नष्ट करने के लिये शिक्षणक्रम कैसा होना चाहिये, इसकी कल्पना ब्रिटिश एसोसिएशन के सामने हाल ही के दिये हुए एक व्याख्यान में एच्. जी. वेल्स ने बतलाई है। इस में उन्होंने बतलाया कि वैज्ञानिक विषयों की अवहेलना करना बहुत बड़ी गलती होगी। "यदि किसी क्षेत्र में मर्यादा अथवा भेदभाव न होगा अर्थात् विश्वबन्धुत्व होगा तो वह विज्ञानाभ्यास का ही क्षेत्र है"। इस प्रकार एच. जी. वेल्सने ज़ोरदार शिक्षा दी है। आज का समय प्रश्न का समय है। प्रत्येक के मस्तिष्क में, "यह क्या? यह कैसे? यह क्यों? उस में क्या है? ऐसा न हो तो?" इत्यादि प्रश्न उथल पुथल उत्पन्न करते हैं। इन सब का उत्तर देने का प्रयत्न वैज्ञानिक करता है। यदि यह ठीक है तो मनुष्य मात्र की शिक्षा में यह वैज्ञानिक सिद्धान्त आने ही चाहिये। ऐसा न हुआ तो ऐसा व्यक्ति संसार में एकांगी प्रवृत्ति का सिद्ध होगा।

हिन्दी भाषा और वैज्ञानिक शिक्षा
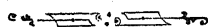
इस विषय का कितना महत्व है यह आधुनिक विद्वानों को समझाने की आवश्यकता नहीं है। तो भी हमारे यहां इस सम्बन्ध में बहुत ही प्रमाद से काम चलाया गया है, यह दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है। "जो हो रहा है, सो होने दो" यह हमारा प्राकृतिक स्वभाव है। ऐसा होना या न होना प्रायः हमारे हाथ में नहीं है। तो भी वैज्ञानिक शिक्षा बहुत आवश्यक है, और उसके अभाव में हमारी कल्पना से भी अधिक हानि हो रही है, ऐसा कहना सत्य से परे नहीं होगा। इसलिये इस सम्बन्ध में हमें क्या करना चाहिये यह बतलाना और उसकी सिद्धि के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

वैज्ञानिक शिक्षा का महत्त्व

वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी द्वारा देने की आवश्यकता है या नहीं इस प्रश्न पर विचार करने से पहले इस विषय की शिक्षा देने की वास्तव में आवश्यकता है भी या नहीं, इस का निर्णय हो जाना चाहिये। यदि उस की आवश्यकता है, तो इस के प्राप्त करने के मार्ग का विचार करते हुए पहले पहल ऐसी शिक्षा की कितनी आवश्यकता है, इस बात का निर्णय करना चाहिये।

शिक्षण में इस विषय का समावेश होता है या नहीं.—इसी प्रकार वैज्ञानिक शिक्षण की कितनी आवश्यकता है इस का विचार करने से पहले शिक्षण क्या है? और इस में कौन २ से विषयों

का समावेश होता है, यह भी जानना चाहिये । कुमार चन्द्रपीड़ा को जो विषय सिखलाने निश्चित हुए थे, उन की सूची से हम को अपने पूर्वजों के शिक्षा की व्यापकता सम्बन्धी विचारों का पता लगता है । यह सब विषय एक मनुष्य की समझ में आ जायें, यह प्रायः असम्भव सा मालूम होता है । तो भी इतना तो उससे सिद्ध हो जाता है, कि उस समय भी शिक्षा का क्षेत्र आज की अपेक्षा संकुचित न था । और शिक्षणक्रम में विविध प्रकार के विषय आने चाहियें ऐसी ही उत्कट इच्छा अपने पूर्वजों की थी यह स्पष्ट दिखाई देता है ।

पश्चिमी राष्ट्रों को यह भय है, कि उन के शिक्षणक्रम में वैज्ञानिक शिक्षा का प्रमाण आवश्यकता से कम है और ऐसा होने से कदाचित् वे अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में पिछड़ जायेंगे । वैज्ञानिक शिक्षण का प्रसार यथाशक्ति बढ़ाने के लिये स्मित्सोनियन इन्स्टि-ट्यूट अथवा गार्वान जैसे कितने ही सज्जन यत्न कर रहे हैं । यह देखकर यदि कोई कहे कि पाश्चात्य राष्ट्रों में जहाँ वैज्ञानिक शिक्षण का इतना अभाव है तो हमें अपने लिये चिन्तित होने की क्या आवश्यकता है, तो इस प्रश्न का उत्तर केवल यही हो सकता है, कि 'अगला गिरे, पिछला सावधान' ।

वैज्ञानिक शिक्षा की व्याप्ति.—कोई ऐसा पूछ सकता है कि वैज्ञानिक शिक्षण का अर्थ ही क्या है, तो इसका उत्तर निम्नलिखित होगा । हज़ारों वर्षों से ही नहीं, किंतु जब से पृथ्वी पर मनुष्य बसने लगे हैं तब से आज तक मनुष्यों की बुद्धि और शक्ति में कुछ विशेष अन्तर पड़ा हो ऐसा दिखाई नहीं देता । अपितु उस समय में लोगों की भाषा अधिक मार्मिक, शक्तिशाली और अर्थपूर्ण थी, ऐसा ही दिखाई पड़ता है,

क्यों कि देखिये, पुरातन साहित्य के समान आजकल के कितने ग्रन्थ उतरते हैं ?

आधुनिक वैज्ञानिकों के लेख उस समय के ग्रन्थों के सामने कुछ भी नहीं टिकते। और वैसा कभी हो सकेगा, ऐसी भी सम्भावना नहीं । इसी प्रकार पूर्वकालीन सुनार (smiths) शिल्पकार अथवा और कारीगरों को लीजिये । इनके हाथ से बने हुए आश्चर्यजनक कार्य आजकल किसी से क्या हो सकेंगे ? अपितु यह भी कहा जा सकता है कि पिछली कितनी ही शताब्दियों में कला, साहित्य अथवा तत्त्वज्ञान जैसे गम्भीर विषयों में कुछ भी प्रगति नहीं हुई । एक भी विशेष कल्पना अथवा नया विचार प्रतिपादित नहीं हुआ। आज हम जिसे संस्कृति कहते हैं वह केवल इतनी ही है कि कुछ पुरानी बातें, जो समय के मान के अनुसार लोगों को रुचिकर लगें ऐसी नयी विधि से पृथक् २ रूप देकर सजाई हुई हैं। ऊपर दिखलाई हुई सारी बातों की शाखाएँ प्रायः करके पहले ही पूर्णरूपेण विकसित हुई हैं । हम आज यदि कुछ कर सकते हैं तो वह इतना ही कि आज तक मानव बुद्धि के ध्यान से जो बातें छूट गई हैं, उन्हीं की अभिवृद्धि करें । अर्थात् पदार्थविज्ञान शास्त्र का अभ्यास करें और उस की उपयोगिता की जानकारी मनुष्यमात्र को कराएं ।

यदि संक्षेप में कहा जाये तो **पदार्थविज्ञान-शास्त्र** उसे कहेंगे **जिससे संसार की उथलपुथल के कार्य कारण तत्त्वों का सञ्चय, विश्लेषण और सम्मिश्रण का ज्ञान हो**। इसी बात को आज की व्यापारिक दृष्टि के संसार की भाषा में उत्तर देना हो तो आज तक की होनेवाली **विविध शिल्प-क्रियाओं और यान्त्रिक-धन्धों के परस्पर पोषक स्वभाव, सम्बन्ध तथा अभिवृद्धि**, जिसे हम

साधारणतः औद्योगिक सुधार कहते हैं और जो वास्तव में विज्ञान शास्त्र ही है ।

वैज्ञानिक शिक्षा से लाभ.—वैज्ञानिक शिक्षा से मनुष्य की विचार शक्ति में एक निराले प्रकार की लगन लगती है, जिससे मनुष्य की विवेचन शक्ति, मन की समतोलता, विवेचक बुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि आदि गुणों में उत्तम रीति से विकास होता है । विज्ञान का अध्ययन सत्य, प्रीति, सहनशीलता, लगन, स्वच्छता, दीर्घ उद्योग, परिश्रम से प्रेम और आदर इत्यादि गुणों का पोषक है । इतना ही नहीं अपितु संक्षेप में कहा जाये तो विज्ञान के अध्ययन से मनुष्य-मात्र में अपने २ स्थान पर ऐच्छिक, मानसिक और नैतिक सद्‌गुणों की अभिवृद्धि होती है ।

अधिक क्या कहा जाये, कई लोग यह भी कहते हैं कि किसी को बड़ा राजनीतिज्ञ वा वकील बनना हो, तो इस दृष्टि से भी पहले गणित और उसके साथ २ वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन आवश्यक है । थोड़े दिन पहले 'वसंत व्याख्यान माला' में व्याख्यान देते समय हमारे इतिहास संशोधक स्वर्गस्थ राजवाड़ेजी ने कहा था, "मैंने अपना जीवन, इतिहास को अर्पण किया है, तो भी मैं आप को यह हृदय की बात कहना चाहता हूँ कि आप पहले एक बार पदार्थ–विज्ञानशास्त्र का अभ्यास कीजिये । इस से आप की विचार–धारा को एक विशेष मार्ग मिलेगा और वह अन्त में बहुत लाभदायक सिद्ध होगा ।" उन के ये उद्गार हमारे लिये मननीय हैं ।

वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव में—वैज्ञानिक विषयों में आज-कल मुख्यतः तीन विषयों का समावेश किया जाता है,

(१) रसायनशास्त्र (२) भौतिकशास्त्र (३) जीवनशास्त्र । उपर्युक्त शास्त्रों की आज हमें कितनी आवश्यकता है यह बिना कहे ही समझा जा सकता है। इस विषय में जितना कहा जाय उतना ही थोड़ा है। इन विषयों के सामान्य नियमों में गाढ़ अज्ञान होने के कारण आज अपरिमित हानि हो रही है । बहुत से लोगों का कहना है कि विज्ञान के पढ़ने से मनुष्य नास्तिक बन जाता है। कम से कम ऐसा सभी जगह समझा जाता है। और यदि यह वास्तव में सत्य होता तो आज जहाँ तहाँ अनावस्था फैली हुई दिखाई देती। ऊपर से देखने वाले को ऐसा ही प्रतीत होता है कि नास्तिकता इस आधुनिक शिक्षा और उस के साथ वैज्ञानिक अध्ययन का ही परिणाम होना चाहिये । परन्तु जो वैज्ञानिक अपने २ विषय में पारंगत हो गये हैं, उन में से जो कुछ पहले थोड़े बहुत नास्तिक थे, उनमें भी अन्त में विचार विमर्ष होकर वे भाव मिट गये और फिर वह कट्टर आस्तिक बन गये। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है । अब वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव से आप को कहां २ और कितनी हानि पहुंच रही है इसपर दृष्टि डालिये ।

धर्मगुरु.—हमारे पूर्वकालीन और आजकल के वैद्यक या याज्ञिक दोनों प्रकार के धर्मगुरुओं की ओर दृष्टिपात कीजिये। उस समय इस श्रेणी के लोगों ने तत्कालीन उपलब्ध ग्रन्थों का, थोड़े बहुत प्रमाण में ही क्यों न हो, परिशीलन किया था। इस से उन की विद्वत्ता सहज में ही शेष जनसाधारण से अधिक होती थी। ऐसा होने के कारण वह सहज ही आदर के पात्र होते थे और उन को योग्य मान मिलता ही था। परन्तु आज की स्थिति बदली हुई है। पिछली बातों से बिलकुल उलटी है।

लोगों के ज्ञानक्षेत्र फैल गये हैं। परन्तु हमारे धर्मगुरु म्लेंच्छ भाषा से प्राप्त होनेवाला ज्ञान म्लेंच्छ ही है ऐसी अपनी खोटी समझ बनाकर कूपमंडूप वृत्तिसे रहने लगे, जिस के कारण शनैः २ उनके प्रति अनादर उत्पन्न हो गया। इस अनादर को बढ़ाने के लिये ईसाई प्रचारकों ने भी बहुत सहायता पहुँचाई। यह प्रगट ही है कि जिस को अपने पक्ष का उत्तम समर्थन करना होता है, उसको दूसरे के अर्थात् अपने प्रतिपक्षी के दोष बढ़ाकर दिखाने होते हैं। यह एक सर्वसाधारण वकालत का मार्ग है। उन प्रतिपक्षिओं को खरा या खोटा ठहराना या उनसे विवाद करना यह प्रत्येक के ज्ञानपर पूर्णतया अवलम्बित है। हमारा अपना क्या है, यह तो हम जानते नहीं और दूसरों के दिखाये हुए हमारे दोष यथार्थ हैं या नहीं यह जानने की हम इच्छा नहीं करते। ऐसी अवस्था होने पर हमारी कोई भी बात बुरी ठहराई जा सकती है, इसमें आश्चर्य नहीं।

इसमें दूसरी बात एक और यह समझी जाने लगी, कि जितना पुराना उतना सदोष, फिर चाहे कुछ ही क्यों न हो, और जितना पाश्चात्य अर्थात् नया उतना ही अच्छा। ऐसा मानना किंचित कठिन होता तो भी ऐसा प्रतिपादन करना एक सभ्यता का मार्ग है और ऐसा न करना गँवारपन है, ऐसी कच्ची भावना लोगों के हृदय में जम गई थी। पढ़ता कौन, क्या पढ़ता? ऊपर २ की दो चार बातें अथवा बहुत हो गया तो अनुमान से त्रिकालाबाधित ऐसे दो चार सिद्धान्त जड़ दिये, और बस। इससे क्या हो गया? अपना साहित्य हमें गिरा हुआ मालूम होने लगा, और उसमें से कुछ सीखने योग्य बात है भी या नहीं, यह जानना कठिन हो गया।

परन्तु अपने पुरानें ग्रन्थों का नई तुलनात्मक पद्धति से अर्थात् अर्वाचीन ऐनक लगाकर विचार किया जाये तो भी हमारे वैज्ञानिकों को क्या पाश्चात्य वैज्ञानिकों से कम मान मिलेगा ? ऐसे लोगों का श्रोतागण क्या कम आदर करते हैं ? अधिक क्या, वाई के बापट शास्त्रीजी का उदाहरण लीजिये । उनके जैसें तुलनात्मक पद्धति से विवेचन करने वाले विद्वान नागरिक आज जो एकाध विश्व-विद्यालय के कालेज को मिलें तो उनकी वाह वाह क्या थोड़ी होगी ? मैं तो ऐसी संस्थाओं को ऐसे नागरिक का मिलना उस संस्था का सौभाग्य समझता हूँ । हमारे पास इनके जैसे वैदिक और प्रचुर विद्वत्ता और उदात्त विचारों के याज्ञिक ब्राह्मण होंगे तो विश्वास के साथ हमारे धर्मकी उन्नति होगी और आज की परिस्थिति के अनुसार पुरानें विचारों में से त्याज्य क्या है, और ग्राह्य क्या है, वह सबकी समझ में आ जायेगा, और धर्म में अवहेलना नहीं रहेगी । शास्त्री अथवा वैद्य के लिये हमारे हृदय में क्या भावना है, इस का एकही उदाहरण पर्याप्त है । जब मैंने एक बार एक संस्कृत भाषा के प्रॉफ़ेसर को 'आइये शास्त्रीजी महाराज' कहकर बुलाया तो उन को ऐसा अनुभव हुआ कि मैंने उक्त प्रोफ़ेसर सज्जन का अपमान किया है । मुझे उन को बहुत समझाना मनाना पड़ा । इसी प्रकार दूसरे प्रोफ़ेसरों और डाक्टरों के साथ भी ऐसे प्रसंग आये । परन्तु यदि हमारे प्रोफ़ेसर और डाक्टर यह जानने का प्रयत्न करें कि हमारे पुराने शास्त्री पण्डित तथा वैद्य कितने उच्च कोटिके विद्वान थे और शास्त्री तथा वैद्य बनने के लिये उन्हें क्या २ यत्न करने पड़े होंगे तो उनके ध्यान में आयेगा कि शास्त्री और वैद्य की पदवी प्रोफ़ेसर और डाक्टर की पदवी से कहीं अधिक मूल्यवान है । उपरोक्त विचार श्रेणी का कारण अपने बारे में अथवा अपनी संस्कृति के बारे में

लोगों का निर्माण किया हुआ अनादर तथा आजकल के शास्त्री और वैद्यों की अपात्रता है।

भौतिक शास्त्र.—उपर्युक्त बात हमारे धर्मगुरुओं और शास्त्रीय पण्डितों की हुई। अब हम थोड़ी सी दैनिक व्यवहार में आनेवाली बातों पर विचार करें। वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव में हमारी कितनी हानि हो रही है और उससे बचना कितना सहज है और उसके लिये क्या करना चाहिये इस पर विचार करें। इसी तरह समय २ पर "अंग्रेज़ बड़ा चतुर है, हमारे सुख के लिये कैसी २ निराली युक्तियाँ निकाली हैं।" ऐसा सुनने का हमें अधिक प्रसंग न आये ऐसी कुछ योजना करनी चाहिये। और वह क्या होगी, इसका विचार करें। अग्नि सुलगाने की मामूली बात को लीजिये, इसमें भी कितना अज्ञान दृष्टिगोचर होता है। ऐसा ही अज्ञान साबुनादि आवश्यक वस्तुओं के बारे में भी है। ठीक विचार करने से यह मालूम होगा कि इस अज्ञान से निष्कारण वस्तुओं का नाश होता रहता है। अग्नि सुलगाने के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए एक जगह किसीने ऐसा कहा है कि, ऊपर से अग्नि के जलाने का यत्न करने वाली दुराग्रही जो व्यक्ति है उसी को स्त्री कहना चाहिये। अर्थात् स्त्री अज्ञानी होने के कारण ऊपर से आग सुलगाती है, उसे यह मालूम ही नहीं कि आग का जलना एक रासायनिक क्रिया है। आग क्यों जलती है, भली प्रकार आग कैसे जलती है, और अच्छी तरह जलने के लिये आग के नीचे से सम्यक् प्राणवायु क्यों मिलनी चाहिये, यह बात स्त्री के ध्यान में ही नहीं आती।

ऐसी ही दूसरी बात, रसोई बनाने की लीजिये। क़लई किये हुए बर्तन में छौंका क्यों न देना चाहिये, बहुत अधिक खट्टी

चीज़ों में सोडा या पापड़क्षार डालने से खटास क्यों कम होती है, इसी प्रकार चावलादि उबालने से पहले क्यों भिगोने चाहियें, सोडे के अन्दर वे क्यों जल्दी गल जाते हैं, और इस तरह ईंधन का खर्च कैसे कम कर सकते हैं, सोडे से वस्तु खस्ता क्यों हो जाती है, चपाती का आटा भिगोकर बहुत देर रखने के पीछे बनाई हुई चपाती अच्छी और फूली हुई क्यों होती है और फिर ज्वार या बाजरे के आटे को इतनी देर तक इस रीति से रखने की आवश्यकता क्यों नहीं है, तले हुए पदार्थ सेके हुए वा उबाले हुए पदार्थों की अपेक्षा पचने में अधिक कठिन क्यों होते हैं, पकाने की क्रिया ठीक समय पर और सीमित आँच न देने से क्यों बिगड़ जाती है, और चौगुनी आँच देकर भी नियत समय से पहले पाकसिद्धि में कभी भी कम समय क्यों नहीं लगता आदि बातें थोड़े प्रयास द्वारा सीखने से समझ में आ सकती हैं। कोई भी बात हम क्यों करते हैं, कैसे करते हैं और किस लिये करते हैं, जब यह मालूम हो जाये तो हम अवश्य ही, वह काम व्यवस्थित रीति से कर सकते हैं। आज कल हमारे यहाँ चाय कुछ कम नहीं पी जाती, परन्तु चाय, तैयार करने में उसके विशेष नियम और प्रमाणों को यदि ध्यान में नहीं रखा जाये तो उसका स्वाद, गन्ध (flavour) नष्ट हो जाता है, यह बात कितने थोड़े लोगों को मालूम है। और इस के अज्ञान से हम पर कैसे प्रसंग बीतते हैं यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

कृषक वर्ग.—भारत देश आज मुख्यतया खेती पर अवलम्बित है। जब यह एक सिद्ध बात है तो अपने कृषक वर्ग की जो दुर्दशा देखने में आती है, उसके अनेक कारणों में से एक कारण उनका व्यवसाय सम्बन्धी अज्ञान है। अपनी खेती का समय क्या

है, खेती के पोषक द्रव्य क्या २ हैं, यदि वे अपनी भूमि में नहीं हैं, तो उन को कैसे और कहाँ से लाकर इष्ट की सिद्धि करनी चाहिये, कौन सी फ़सल में क्या २ डालना चाहिये, और वह एक ही और अमुक प्रमाण में क्यों हो, पशुओं के खाने पीने का किस प्रकार ध्यान रखा जाये और उनके रखने की व्यवस्था और बीमारी आने पर उनकी चिकित्सा और स्वास्थ्यरक्षा किस प्रकार करनी चाहिये, फलों और फूलों के वृक्षोंपर कीट क्यों लग जाता है, उनको पड़ने न देने और यदि पड़ गये हों तो उनको नष्ट करने की विधि क्या होनी चाहिये इत्यादि बातों का यदि ज्ञान हो तो कृषक भूत प्रेत के टोटके न करके अथवा दैव पर भरोसा करके न बैठे रहकर आपत्ति का व्यवास्थित रीति से निवारण क्या नहीं कर सकेगा ?

कारख़ाने के मालिक.—कृषक वर्ग के सम्बन्ध में सचमुच हमे दुख होता है, क्योंकि उनका अज्ञान उन की परिस्थिति से ही उत्पन्न हुआ है। वह दूर करना असम्भव तो नहीं है। परन्तु यह परिस्थिति अपने गिरणी और कारख़ाने के मालिकों की नहीं है। इनके सम्बन्ध में दुख तो सर्वथा नहीं होता, परन्तु इनके घमण्ड पर हँसी अवश्य आती है। कभी २ क्रोध भी आता है। इन लोगों के अज्ञान के कारण हमारे देश की अपरिमित हानि हो रही है और उसके कम होने की बहुत आशा नहीं दिखाई देती।

'ज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति'। यदि किसी को कोई बात न आती हो और वह अपने अज्ञान से परिचित हो तो उसे समझाना सरल है; परन्तु हमारे यहाँ के कारख़ाने के मालिकों या मैनेजरों की दशा ऐसी नहीं है। यह लोग एकदम स्वतन्त्र वृत्ति के होते हैं। उन में से बहुत से तो समझते हैं कि वे सब कुछ

जानते हैं । "वैज्ञानिक ज्ञान इत्यादि सब झूठ है । सच है तो व्यापारी दृष्टि । वह जब तक है, तब तक सब कुछ है ।" ऐसा वे बड़े घमण्ड से कहा करते हैं । इस वृत्ति के कारण उन के सौभाग्य से एक ऐसा काल आ गया था कि जिसमें उन्हें चारों ओर से लाभ ही लाभ दिखाई देता था और उन से प्रतिस्पर्धा करने वाला कोई नहीं था । इस प्रकार उन्हें अपरिमित धन मिलता था और "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते" इस उक्ति से वे बुद्धिवान और सर्वज्ञ माने जाते थे । दुख की बात तो यह है कि उन को ऐसा भ्रम हो जाता था कि वह सचमुच सर्वज्ञ हैं ।

आज परिस्थिति बदली हुई है । आखों में अंजन लगा कर विभिन्न विषयों में जितनी हो सके उतनी मितव्ययता करने का समय बड़ी तेज़ी से समीप आता जा रहा है, अथवा समीप आ गया है । ऐसी परिस्थिति में इन लोगों के वैज्ञानिक ज्ञान से शून्य होने से इन धन्दों की स्वदेशी के अभाव में क्या स्थिति हुई और क्या स्थिति हो जाती, इस की कल्पना न ही की जाये तो अच्छा है । उन के वैज्ञानिक ज्ञान दौर्बल्य से अपने देश की विविध प्रकार से कितनी हानि हो रही है इस के जितने उदाहरण दिये जायें, थोड़े ही होंगे ।

श्रमिक वर्ग.—हमारे देश में आतुरालय और प्रयोगशाला में नौकरी करने वाले कितने ही लोगों की बुद्धिनिपुणता उच्च शिक्षण न मिलने पर भी प्रायः आश्चर्यचकित कर देती है । इतना होने पर भी इन लोगों में से **क्यूरी** या **एडिसन** जैसे उत्तम वैज्ञानिक अथवा अनुसन्धानकर्त्ता क्यों नही निकलते, इस का कारण यदि कोई ढूँढने लगेगा तब उसको एक ही उत्तर मिलेगा, कि अपनी भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों के अभाव के कारण हम लोगों में

ऐसे विषयों का अपने श्रम से मामूली से मामूली ज्ञान भी प्राप्त करना असम्भव होता है। ऐसी अवस्था में विज्ञान के मर्म का ज्ञान कैसे हो सकता है? जब विषय का समझना ही कठिन है तो उस में अनुसन्धान करना अथवा सुधार करने की तो बात ही कहाँ?

मान लीजिये कि किसी एक के मन में वैज्ञानिक विषय की रुचि है, उस को ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा भी है, परन्तु हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक विषय पर इस श्रेणी की क्रमिक पुस्तकें नहीं हैं, अतएव वैज्ञानिक विषय की गन्ध भी न लगने के कारण इस विषय की रुचि जब यदा कदाचित् विशेष वेग से उठती भी है तो वह कुछ दिनों के बाद अपने आप मिट जाती है। फिर **फ़राडे, इरा रेमसेन** अथवा **एडिसन** कैसे पैदा होंगे? यह तो स्पष्ट है कि जब विषय ही मालूम नहीं तो कोई उस विषय में प्रवीण कैसे हो सकता है?

जीवनशास्त्र.—रसायनशास्त्र का क्षेत्र यदि छोड़ दिया जाये तो भी हम इस पृथ्वी पर अन्य प्राणियों के अनुसार चलने वाले एक प्राणी हैं और उसी तरह हमारी क्रियाएँ भी चलती हैं। इस बात की जानकारी कितने लोगों को है, कि परिस्थिति के अनुसार अन्तर पड़ने के कारण जैसे अन्य प्राणियों में भेद पड़ता है उसी तरह ही हम में भी भेद पड़ता है।

यह जानना आवश्यक नहीं है क्या? उदाहरण के लिये विभिन्न रोगों के मुख्य कारण उन रोगों के मुख्य उत्पादक विशेष कीटाणुँ हैं। वे कीटाणुँ और उन से उत्पन्न होने वाले रोगों का निराकरण करने के दो मार्ग हैं। एक तो उन को मार कर समूल नष्ट कर देना और दूसरा अपने शरीर में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना कि नवीन आये हुए जन्तु शरीर पर अपना प्रभाव न जमा सकें। इसी

प्रकार उन की जीवनक्रिया और उत्पादन किसी न किसी तरह समाप्त हो जाता है। ऐसा होने से ही उन से अपना बचाव होता है। यह ऐसा क्यों होता है और क्या २ करने से यह बात साध्य होती है, इस का ज्ञान हमें न हो ऐसा कौन कहेगा ? उत्तम स्वास्थ्य किस को नहीं चाहिये ? प्राणिमात्र का जीवन उसकी चारों ओर की परिस्थिति पर ही बहुत कुछ अवलम्बित है, यह आप को एक ही मामूली उदाहरण से समझ में आ जायेगा। दूध के जमने का अर्थ उस में एक विशेष परिस्थिति (फ़रमेन्टेशन) के द्वारा कीटाणु पैदा होना है। इस विशेष फ़रमेन्टेशन में पोषक जलवायु, तापादि बातें बहुत ही ध्यानपूर्वक पालन करनी होती हैं। इस प्रकार यदि न किया जाये तो क्या होता है, इसका सब को अनुभव है ही। अब ऐसे शास्त्र के ज्ञान को प्राप्त नहीं करना चाहिये, ऐसा कौन कहेगा ?

मानव देह.—इसी प्रकार से मनुष्य ईश्वर–निर्मित कृतियों में एक बहुत ही पूर्णता प्राप्त एक कृति है। हमारे धर्मशास्त्र भी यही कहते हैं। जिस प्रकार से मन का प्रभाव शरीर पर होता है, इसी प्रकार इस से विपरीत देह की परिस्थिति का प्रभाव भी मन के विकार और विकास पर पड़ता है। और यह परस्पर सम्बन्ध जीवनशास्त्र से सिद्ध है। मनुष्य आज कितने ही वर्षों से शनैः २ उन्नति करता हुआ इस स्थिति पर पहुँचा है, परन्तु यह स्थिति उसकी परिस्थिति पर ही बहुत कुछ अवलम्बित रहती है, इतना ही नहीं अपितु वह प्रायः आनुवंशिक गुणधर्म की विचित्र शक्ति का एक बना हुआ मिश्रण है। ऊपर यह बताया ही गया है कि मनुष्य अन्य प्राणियों की भान्ति ही एक प्रकार का जीव है, परन्तु यह अन्य प्राणियों की अपेक्षा सकंटापन्न स्थिति में घिरा हुआ होने पर भी येनकेन प्रकारेण अपनी बुद्धिमता से सब प्राणियों पर अपनी महत्ता का प्रभाव बिठाये रखता है। यदि यह ठीक है तो वह

जीवन–शास्त्र में एक विशिष्ट जीव ही क्यों न हो, परन्तु है तो जीव ही, और इसीलिये ही अन्य प्राणियों की जीवनाक्रिया के लिये जो २ नियम लागू हैं, वही नियम मनुष्य शरीर के लिये भी लागू हैं।

यदि यह बात है तो जीवनशास्त्र का विषय भी अपनी शिक्षा में बहुत आवश्यक है। इस विज्ञान के अध्ययन से हमारे शरीर में क्या २ और कैसे २ परिवर्तन हो रहे हैं, यह हमारी दृष्टिपटल पर आता है, और इस परिवर्तन के पीछे इस अव्याहत सृष्टिचक्र को वेग से चलाने वाला कोई न कोई एक नेता होना चाहिये ऐसा निश्चय होता जाता है। मनुष्यप्राणी इस पृथ्वी पर किसी धूमकेतु अथवा ऊपर से गिरे हुए पत्थर के टुकड़े की तरह नहीं है, अपितु एक विशिष्ट परिस्थिति के अनुसार विशेष रीति से विकास पाया हुआ प्राणी है, यह निर्विवाद है।

जीवन–शास्त्र के सम्बन्ध में संक्षेप से देखते हुए सारे भारतीय और उन में के शाकहारी लोग जैसे जैन पंथी और इन में का विशेषतया स्त्रीवर्ग स्वभाव से ही जीवन–शास्त्र से घृणा करता है। परन्तु इस बात में दुराग्रह बहुत अंश में शिक्षक पर और उसकी अपेक्षा शिष्यों के हठीलेपन पर अवलम्बित है। इस मार्ग में व्यवस्थित रीति से प्रयत्न करने पर उन को ठीक मार्ग पर लाना असम्भव नहीं। उदाहरण के लिये आजकल हमारे देश में कितनी ही स्त्रियाँ और जैन लोग धर्म-सम्मत न होते हुए भी केवल शिक्षा प्राप्ति के उच्च ध्येय को मन में रखते हुए चीरफाड़ सीखकर डाक्टरी की परीक्षा देते हुए दिखाई देते हैं।

वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता.—आजकल का काल बहुत उग्र क्रान्ति और तीव्र विकास का है, और इसी लिये यदि हम संसार में पिछड़े हुए नहीं रहना चाहते तो जिस वैज्ञानिक शिक्षा

पर उपरोक्त बातें अवलम्बित हैं उस की हमें बहुत ही आवश्यकता है। इसी प्रकार हमें जब दूसरे शास्त्र पारंगत राष्ट्रों से स्पर्धा करनी है, उन से बराबरी करनी है, तो हमें अपनी संस्कृति भी उसी मार्ग से हर प्रयत्न कर के बढ़ानी चाहिये। भारतवासियों का झुकाव यदि तत्त्वज्ञान की ओर रहा है, तो भी हमें जब आज व्यवहारिक लोगों से झगड़ना है तो उस बात की और उन तत्त्वों की ओर तथा उन से फलित हुए वैज्ञानिक विचारों की ओर बढ़े बिना कैसे काम चलेगा? आजकल की वैज्ञानिक शिक्षा का फैलाव हमारे यहाँ के सुदूर ग्रामों मे होना चाहिये. तभी हम पाश्चात्य लोगों के साथ बराबरी कर सकेंगे, नहीं तो हम जिस अवस्था में हैं, उस से भी अधोगति को प्राप्त हो कर केवल नामशेष ही रह जायेंगे।

वैज्ञानिक शिक्षा और हिन्दी भाषा

पूर्वस्थिति.—ऊपर के विवेचन से वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता सिद्ध हो गई है। अब वह सर्वव्यापी और सरल कैसे हो सकती है, इस मार्ग के विवेचन की ओर हम दृष्टि देते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत ही मतभेद हैं। पिछली शताब्दियों में लोगों का यह विचार रहा है, कि वैज्ञानिक शिक्षा केवल अंग्रेज़ी में ही दी जा सकती है। जिन को अंग्रेज़ी नहीं आती उन को विज्ञान नहीं आ सकता। उन का यह विचार उस समय की परिस्थिति के कारण था। अंग्रेज़ी हमारी राजभाषा होने के कारण जो कुछ सीखने लायक है वह सब अंग्रेज़ी में है, इस लिये पहले अंग्रेज़ी आनी ही चाहिये, ऐसा सिद्धान्त बना लिया गया था। उस समय के लोगों का दृष्टिकोण पृथक् था, उन्होंने विलायती ऐनक लगायी हुई थी और इस कारण अपने यहाँ कुछ भी सीखने योग्य है भी

या नहीं इस का विचार उन को छूता तक भी नहीं था। इतना ही नहीं, अपितु उपरोक्त दृष्टि के अनुसार उस प्रकार विधान करना यह उस समय के सभ्य सम्प्रदाय के लिये आवश्यक था।

इस का कारण यही दिखाई देता है कि विदेशी आक्रमण से हमारी संस्कृति पूर्णतया नष्ट हो गई थी। "हमारी संस्कृति में कुछ नहीं है, यदि होता, तो परतन्त्रता की श्रृंखला हमारे गले में न पड़ जाती"। इस विचार से हमारा स्वाभिमान असंख्य विघातक कल्पनाओं द्वारा तथा विदेशी रीतिरिवाज और विशेषकर अंग्रेज़ी शिक्षा द्वारा नष्ट हो गया। स्वाभाविक ही हमारा ध्यान पश्चिमी संस्कृति की ओर अधिक खिंच गया, और यह धारणा दृढ़ होती गई, कि अंग्रेज़ी चाल–चलन और भाषा हमारे चालचलन वा भाषा से अच्छी है। हंसक्षीर न्याय की दृष्टि से इन विचारों की छानबीन नहीं की गई, और 'यत्र २ धूम्रः तत्र २ वह्निः' इस न्याय के अनुसार जो२ विदेशी वह सब अच्छा ही होगा, इस कल्पना के भ्रम से आज हिन्दी भाषा कितनी निकृष्टावस्था में हो गई है यह आप पहले ही जान चुके हैं। अधिक क्या कहें, कुछ वर्ष पहले बहुत से कुटुम्बों में नित्य व्यवहार के लिये हिन्दी में बातचीत करना गँवारपन समझा जाता था। वैसे ही माँ बाप बच्चों से मम्मा या पप्पा कहलाने पर ही अपने को धन्य समझते थे। इस प्रकार के विचारों के माँ बाप की कमी नहीं थी।

आधुनिक स्थिति.—आजकल भिन्न २ विषयों को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने की परिपाटी बन गई है। इस परिपाटी का अनुशीलन करने में अंग्रेज़ ही नहीं परन्तु अन्य राष्ट्र भी आगे बढ़े हैं। वैसे ही जापान, रशिया, और तुर्किस्तान आदि कुछ राष्ट्र उन्नति

करना चाहते हैं। जिन राष्ट्रों की मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं है और जो अपनी भाषा द्वारा अधिक मात्रा में सब ज्ञान प्राप्त करते हैं और शिक्षा देते हैं, उन के उदाहरण हमारे सामने आये और उस समय से हमारा विचार प्रवाह पलट गया। शिक्षा अंग्रेज़ी के द्वारा ही दी जा सकने की कल्पना भ्रामिक है, ऐसा विचार हमारे हृदय में बैठने लगा। और होते २ आज यह स्थिति आ पहुँची है, कि अन्य राष्ट्रों के समान हमें भी अपनी मातृ–भाषा के द्वारा सब विषयों का ज्ञान करने में हानि नहीं मालूम होती। पढ़ानेवाला चाहिये और वैसे ही यत्न भी करना चाहिये। यह आनन्द की बात है कि इस प्रकार के यत्न समय २ पर हो रहे हैं।

हिन्दी द्वारा वैज्ञानिक शिक्षण की सम्भावना.—हिन्दी से वैज्ञानिक शिक्षा देना सम्भव है या नहीं, और इस भाषा की मूल-भाषा संस्कृत के बारे में तथा हमारी पुरातन संस्कृति के बारे में अन्य राष्ट्रों की क्या सम्मति थी और भारत का वह कितना मान करते थे, इस बात को हम देखें। प्राचीनकाल में भारत के हस्तकला कुशलों तथा विद्वानों को दूसरे राष्ट्रों में बड़े सन्मान से बुलाया जाता था। इतना ही नहीं, अपितु यहाँ के ग्रन्थों के भाषान्तर कर के अपने संग्रहालय में रखने के बहुत से उदाहरण दूसरे राष्ट्रों में पाये जाते हैं। समय २ पर धातु पर लिखे गये लेखों से सुगमता से जाना जा सकता है कि हमारे देश के वैद्य, धातुविद् और खनिज पदार्थों का काम करने वालों का अन्य राष्ट्रों में बहुत सन्मान होता था। निम्न-लिखित दो उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हमारे पूर्वजों तथा संस्कृति के बारे में अन्य लोगों का क्या मत था। राजस्थान के इतिहासकार कर्नल टॉड लिखते हैं 'प्लेटो, थेल्स और पायथॉगोरस जैसे जिन के अनुयायी थे अथवा जिन ऋषियों के तत्त्वज्ञान के ग्रन्थों का अनुवाद

ग्रीक लोगों ने किया है, ऐसे विपुल ज्ञान वाले आचार्य अन्यत्र कहाँ मिलेंगे ? जहाँ के ज्योतिष शास्त्रज्ञों ने संसार की जानकारी का यथार्थ वर्णन हज़ारों वर्ष पहले ही किया है और जो लोग संसार को अपने शिल्पशास्त्रनैपुण्य के द्वारा अचम्भित कर रहे हैं, इतना ही क्यों, अपितु जहाँ के गवैये अपनी कुशलता के द्वारा केवल राग भाव और लय परिवर्तन करके एक ही समय सुनने वालों को दुःख से आनन्द में और आनन्द से दुख में झुला देते हैं और रुला हँसा सकते हैं, ऐसे लोग और कहाँ मिलेंगे ?

उसी प्रकार मॅक्समूलर साहिब ' भारत और उस से हमें क्या सीखना चाहिये ' इस ग्रन्थ में लिखते हैं—

" मनुष्य की विचार शक्ति का इतिहास लीजिये या आत्मज्ञान लीजिये । निर्विवाद ही भारतवर्ष को अग्रसर रहने का मान मिलता है । भाषा, धर्म, पुराण, धार्मिक दंतकथाएँ, तत्त्वज्ञान, रूढ़ियाँ, नियम, कला या शास्त्र आदि किसी भी संस्कृति का विचार कीजिये, तुम्हारी इच्छा हो या न हो, तुम्हें भारतवर्ष का ही सहारा लेना पड़ेगा । क्योंकि मानवी ज्ञान के सम्बन्ध में इतनी सांगोपांग, उप-युक्त और बोधप्रद जानकारी भारत के बाहर कहीं भी प्राप्त होना असम्भव है । "

जिस देश की संस्कृति इतनी उच्च श्रेणी पर पहुँची थी और जिस देश के शास्त्रों के सम्बन्ध में परदेशी लोगों के मन में एक समय इतना आदर था, उस हमारे देश को आधुनिक शास्त्रों में स्वभाषा के द्वारा पारंगत होना या प्रवीणता प्राप्त करना असम्भव है, ऐसा कहना मूर्खता है । सम्भवतः आज उसका प्राप्त होना बहुत कष्टसाध्य दिखाई देता होगा । पर इसका कारण क्या है ? हम अपनी पूर्व संस्कृति से वंचित हो गये हैं और जो लोग थोड़ी

बहुत अंग्रेज़ी जानते हैं उन को अंग्रेज़ी के द्वारा पढ़ना सुखकर और सुलभ मालूम होता है। पर जिन लोगों ने इस बात का गूढ़ विचार किया, उन को यह स्पष्ट मालूम हुआ कि परभाषा की सुलभता अभासमात्र है।

स्वभाषा के द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा.—कोई भी विषय मातृभाषा के द्वारा पढ़ना और पढ़ाना बहुत सुलभ, हितावह और आवश्यक है। पढ़ाने के समय सिद्धान्त, उदाहरण और कल्पना यदि हम अपनी व्यवहारिक वस्तुओं में से देंगे तो बहुत शँकाओं का निवारण सहजता से होगा। अपने विषय अपनी भाषा में जितने विस्तारपूर्वक मार्मिक रीति से ज्ञान में आते हैं, उतने दूसरी भाषा से नहीं। अधिक क्या, समयानुसार आवश्यक शब्द भी दूसरी भाषा में नहीं मिलते। ऐसे समय वह उपमाएँ या विषय हमें सर्वथा छोड़ देने पड़ते हैं, या हमें अपनी हंसी हो जाने के लिये तैयार रहना होता है। कुछ भी हो, यह दोनों मार्ग गौण और शिक्षा की दृष्टि से त्याज्य हैं।

एक बात न भूलनी चाहिये, कि, यद्यपि शिक्षा संस्कृति के लिये दी जाती है, परन्तु आजकल सभी बातों का मूल्य पैसों में किया जाता है। ऐसी स्थिति में धनवान लोगों को इस बात का विश्वास दिलाना चाहिये, कि पैसे का जो व्यय उन्हें करने के लिये कहा जाता है, वह ठीक प्रकार से और जनता केलिये लाभदायक होगा। इस प्रकार के विचार अन्य देशों में पाये जाते हैं। परन्तु हमारे देश में स्थिति सर्वथा इस के विपरीत है। यहाँ शिक्षा पैसे के लिये दी जाती है।

मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देने में लाभ.—मेरा अनुभव है, कि पदार्थ-विज्ञान जैसे विषय, जिस ढंग से लिखे होते हैं, वैसे

विद्यार्थियों की समझ में नहीं आते, और वे उसे बहुत कठिन समझने लगते हैं, तथा वे अपनी शंकाएँ अंग्रेज़ी भाषा में पूछ नहीं सकते और ऐसे विषय के सम्बन्ध में उनको घृणा उत्पन्न हो जाती है। इतना ही नहीं, अपितु हम कुछ ऐसे प्रसंग देखते हैं कि विद्यार्थी अपनी शंकाएँ अध्यापक से पूछने से डरते हैं। कारण यह है, कि जो हमारी कठिनाईयाँ हैं वे हम ठीक अंग्रेज़ी में पूछ सकेंगे या नहीं इस के सम्बन्ध में मन में भय और आत्मविश्वास का अभाव होता है। वैसे ही कईबार और एक रुकावट उत्पन्न होती है, वह यह, कि अध्यापक विद्यार्थियों की समझ में आसानी से आ जाये ऐसी अंग्रेज़ी में नहीं बोलते, और सरल भाषा में समझाने में दुर्बलता समझते हैं। इस प्रकार विषय समझना दुस्वार हो जाता है। विद्यार्थी नहीं समझता, कदापि नहीं समझता और व्यर्थ में मानसिक कष्ट हो कर समय का नाश होता है। इस प्रकार स्वभाषा के अभाव के कारण विषय अपरिपक्व रहते हैं तथा समयानुसार उन के सम्बन्ध में चिरकालस्थाई घृणा उत्पन्न होती है। मैं कुछ वर्ष पहले एक पारसी कन्याशाला में गणित और भौतिकशास्त्र का शिक्षक था। पारसी लोगों का स्वभाविक ही गणित से प्रेम नहीं है और विशेषता स्त्री वर्ग के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या? अंकगणित एक बड़ा कठिन, लगभग असाध्य विषय है, ऐसी उन लड़कियों की परम्परा से दृढ़ धारणा हो गई है, ऐसा मुझे दीखता था। तात्पर्य यह कि बाप भीख नहीं माँगने देता और माँ खिलाती नहीं ऐसी कुछ परिस्थिति है। अंग्रेज़ी में दिया हुआ उदाहरण भाषा दौर्बल्य के कारण समझ में नहीं आता और मातृभाषा द्वारा कोई समझाता नहीं। इन अपने अनुभवों से मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि बहुत समय अपने

यहाँ के शिक्षणक्रम के विषय स्वभाषा के अभाव से अपरिपक्व रहते ही होंगे।

वैज्ञानिक विषयों का शिक्षण मातृभाषा के द्वारा दिया जायेगा तो अध्यापक विद्यार्थियों को भली प्रकार समझा सकेंगे और विद्यार्थी समझ सकेंगे, और अन्य भाषा द्वारा पढ़ाते समय जो व्यर्थ में चिल्लाना पड़ता है वह नहीं करना पड़ेगा। तथा विद्यार्थिओं की समझ में विषय भली प्रकार और शीघ्र ही आ जायेंगे। ऐसे सुगम्य और सुलभ प्रकार से स्वभाषा में स्पष्टीकरण किये हुए विषय खिलवाड़ में ही विद्यार्थी ग्रहण कर लेंगे। इतना ही नहीं, अपितु उस विषय से वे नहीं डरेंगे। उसके विपरीत उन की इन विषयों में रुचि बढ़ेगी। विषय न समझने के कारण उस के प्रति घृणा उत्पन्न होने के उदाहरणों की कमी नहीं है।

वैज्ञानिक शिक्षा सुलभ कैसे होगी

यदि विषय में रुचि बढ़ाना हो और वह सुलभ करना हो तो यह काम मातृभाषा के द्वारा पढ़ाने से ही होगा। यह कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करना अब रह गया है। यदि विषय उत्तम प्रकार से विद्यार्थियों से तय्यार करवाना अभिप्रेत है, तो इस सम्बन्ध में शिक्षक, शिष्य और आवश्यक ग्रन्थ ये तीनों परस्पर सहायक होने चाहियें। इन तीनों में से एक भी कम दरजे का हो तो जितना चाहिये उतना लाभ नहीं होगा। इस सम्बन्ध में मूर्तिकार का उदाहरण बहुत ही योग्य, उचित और मार्मिक है। शिक्षक यदि मूर्तिकार है तो शिष्य सोना, चान्दी, हस्तिदन्त, लक्कड़ या पत्थर हैं (इस में बहुत से प्रकार हो सकते हैं) और ग्रन्थ ये हथियार हैं। हम यह देखेंगे कि यदि एक अच्छी, सुन्दर मूर्ति बनानी हो, तो उस के लिये केवल कुशल मूर्तिकार होने से ही काम नहीं चलता

परन्तु जिस की मूर्ति बनानी होगी वह पदार्थ, धातु, पत्थर या लक्कड़ भी अच्छे प्रकार के चाहियें। इतना ही नहीं, परन्तु उस कार्य के लिये आवश्यक कारीगर के हथियार सर्वदा तीक्ष्ण और ठीक उपयोगी और प्रयोग करने में सहल होने चाहियें। वैसे ही शिक्षा की अवस्था है। केवल शिक्षक या केवल बुद्धिमान विद्यार्थी या अच्छे २ ग्रन्थ होने से क्या लाभ? जिस को शिक्षा लेनी हो और जो देने वाला है, वैसे ही जिस पुस्तक के द्वारा वह शिक्षा मिलनी है ये सब परस्पर पोषक होने चाहियें।

शिक्षक.—फोनोग्राफ़, रेडियो आदि यदि मनुष्य की ठीक आवाज़ को निकालने वाले यन्त्रों का आविष्कार हुआ है, तो भी सभा में गायक का प्रत्यक्ष सुना हुआ गाना कुछ विशेष होता है। वैसे ही शिक्षक के पढ़ाने का प्रभाव। आज तो शिक्षक के स्थान पर कार्य करने वाले यन्त्र के आविष्कार की बहुत सम्भावना नहीं है। परन्तु यदा कदाचित् वैसा हो भी गया तो शिष्य वर्ग का उस से समाधान होगा या नहीं यह कहना कठिन है। प्रत्येक शिक्षक का व्यक्ति महात्म्य भिन्न २ है, वह यन्त्र में कैसे आये?

यन्त्रशिक्षक असाध्य है, ऐसी धारणा करके हम को अपने शिक्षक तैय्यार करने चाहियें। परन्तु यह काम शिक्षा विभाग का है। वे शिक्षक किस श्रेणी के चाहियें इतना ही हम को देखना है। वैज्ञानिक विषयों के शिक्षकों को शिष्य वर्ग की मातृभाषा का ज्ञान होना चाहिये। इतना ही नहीं, भौतिक और जीवन शास्त्र के सम्बन्ध में साधारण जानकारी (हमारे यहाँ यह क्वचित् ही पायी जाती है) और शास्त्र सम्बन्धी यह ज्ञान हमारे नित्य के व्यवहार में कहाँ २ लागू होता है और उसके क्या २ उपयोग हैं, इसकी जानकारी शिक्षक को होनी आवश्यक है। संक्षेप से उनको अपने विषय का

भली प्रकार स्पष्टीकरण करना आना चाहिये। ऐसा शिक्षक तैयार करना इतना सहल नहीं।

ग्रन्थ.—शिक्षकों के अनन्तर ग्रंथों का स्थान है। ग्रंथों में मुख्यतया दो बातें होनी चाहियें। एक तो ग्रन्थ में विषयों के तत्त्व का स्पष्टीकरण थोड़े ही शब्दों में भली प्रकार होना चाहिये। दूसरा यह कि जो बातें या तत्त्व विशेषतया सिखाने हैं, उनका बार २ उल्लेख होना चाहिये और वे विषय भिन्न २ प्रकार से प्रतिपादित करने चाहियें। ऐसा करने से उन विषयों के तत्व विद्यार्थियों के मन में गढ़े जाकर विषय सुलभ और सुकर हो जाता है और अन्त में उस विषय का ज्ञान निश्चित रुप से इच्छानुसार उन्नत होता है। ऐसे ग्रन्थ वैज्ञानिक विषयों पर तय्यार करना सहल नहीं, कारण कि आधुनिक स्थिति ऐसी है कि, साधक है तो साधन नहीं, साधन हैं तो साधक नहीं। जो भाषा प्रवीण होते हैं उनको बहुधा वैज्ञानिक विषयों में अरुचि होती है। इतना ही नहीं किन्तु वे उस विषय से घृणा करते हैं, और जो वैज्ञानिक विषय में पारंगत हैं, उन का भाषा से वैर रहता है। ऐसी यह दुविधा है। इस दुविधा को सुलझाने का उपाय यह है कि भाषा कोविद और वैज्ञानिक का मिलाप करना। क्योंकि यदि ये दोनों अन्धे और पंगु की तरह परस्पर सहायता से मार्ग आक्रमण करना निश्चित करेंगे तो यह बातें बिना कठिनता से हो सकेंगी; और अपने यहाँ उत्तम २ ग्रन्थ और क्रमिक पुस्तकें सहलता से निर्माण होंगी। पर बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? प्रत्येक अपने आप को विद्वान समझता है। ऐसा होने पर इस साँप और नकुल के नाते के जोड़े का मिलाप कौन करेगा? और यदा कदाचित् हो भी गया तो कैसे टिकेगा?

इसमें से एक मार्ग निकलना संभव है। आधुनिक प्रख्यात उपन्यास-कर्त्ता एच्. जी. वेल्स कहते हैं, " बतलाने के लिये जितनी सामग्री वैज्ञानिक के पास है उतनी और किसी के पास नहीं, परन्तु दुर्दैव से उस सामग्री को बतलाने के लिये वैज्ञानिक जितना असमर्थ है उतना और कोई नहीं " । परन्तु वेल्स साहिब जो कहते हैं वह यदि सच भी हो, तो भी मैं कहूँगा कि संतोष के लिये स्थान है। क्यों कि जो जानता है उसे पढ़ाने और समझाने की विधि सिखाना सहल है, परन्तु केवल बकवादी मूर्ख को बहुत सी कल्पनाएँ बताई जायें तो भी उसे कोई लाभ नहीं । वेल्स साहिब से ध्वनित की हुई स्थिति यदि अमेरिका, इंग्लेण्ड आदि स्वभाषा के द्वारा शिक्षा देने वाले देशों की है, तो हमारे यहाँ, जहाँ विज्ञान का ज्ञान ही नहीं और भाषा तो हम पहले ही भूल चुके हैं, ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक विषयों पर ग्रन्थ लिखना कितना कष्टसाध्य है, इस की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

वैज्ञानिक विषयों पर ग्रन्थ लिखना उपरोक्त कारणों से कठिन प्रतीत होता है, तो भी फ्रॉन्स, इंग्लेण्ड, रशिया, जर्मनी, जापान और विशेष कर अमेरिका ने वैज्ञानिक विषयों में अपने २ देश के उद्धार के लिये बहुत परिश्रम और धनव्यय करके भी शिक्षण सामग्री और ग्रन्थों की उत्पत्ति की है । इसलिये हम भी बहुत प्रयत्नों के बाद यह निर्माण कर सकेंगे, ऐसा समझने में कोई बाधा नहीं। वह हमें निर्माण करनी ही चाहिये। इस के बिना हमारी गति रुक जायेगी और ऐसा होना घात है ।

परिभाषा.—बहुत समय लोग परिभाषा के सम्बन्ध में कठिनता बतलाते है, पर मुझे तो यह अनुभव होता है कि उस में कुछ तथ्य नहीं है । पहले पहले कुछ शब्दों की रचना विचित्र होगी

या लगेगी, परन्तु वह आप से आप सुधरेगी या रूढ़ होगी। और दूसरा यह कि प्रत्येक वस्तु के लिये नया शब्द बनाने की आवश्यकता ही क्या है? यूरपवाले जो शब्द जिस वस्तु के लिये प्रयुक्त करते हैं, हम वही शब्द प्रयोग करना क्यों न प्रारम्भ कर दें? विदेशी शब्दों को पहली बार सीखने या संस्कृत धातुओं से नये शब्द तैयार कर के सीखने में बराबर ही श्रम करना पड़ता है। इस के अतिरिक्त संस्कृत शब्दों के लिये भी एकवाक्यता होना लगभग असम्भव है।

वैज्ञानिक शिक्षा का अधिक प्रसार कैसे होगा?

वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान हमें आवश्यक है और वह किस प्रकार साध्य होगा, इस का विवेचन अभी तक हुआ। अब उस का प्रचार कैसे हो और कैसे किया जायेगा यह हम देखेंगे। यह ध्येय पूरा करने और इस विषय में रुचि बढ़ाने के लिये दो प्रकार के यत्न करने से हमारा कार्य शीघ्र और टिकाऊ हो सकता है।

१. **क्रमिक पुस्तकें.**—पहिली बात यह कि, हमारी क्रमिक पुस्तकें भिन्न २ प्रकार के भावों से लिखी होनी चाहियें। यदि वे सब की सब सोवियट रशिया की तैयार की हुई पुस्तकों की तरह केवल वैज्ञानिक विषयों के पाठों से ही भरी न हों, तो भी उन में वैज्ञानिक विषयों पर अधिकतर पाठ होने चाहियें, और वे रेन साहिब जैसे सर्वज्ञानी के द्वारा न लिखवा कर उन विषयों में जो पारंगत और विशेषज्ञ हों और जिन की मातृभाषा हिन्दी हो, उन से ही लिखवाये जाने चाहियें। इस सम्बन्ध में हम अमेरिकन लोगों का अनुकरण करें, तो बहुत लाभ की सम्भावना है। इस के लिये उन के असंख्य प्रयत्न भिन्न २ प्रकार से हो रहे हैं, जो प्रशंसनीय हैं।

२. सामयिक पत्रिकाएँ:–इस विषय में रुचि बढ़ाने का एक और भी उपाय है, वह हमारे यहाँ के पत्र बहुत कुछ पूरा कर सकते हैं। पाठकों की रुचि बढ़ाना बहुत कुछ उन्हीं के हाथ में है। हमारे यहाँ केवल वैज्ञानिक चर्चा करनेवाले पत्र बहुत कम हैं (इस के लिये हम पत्रों को दोषी नहीं ठहरा सकते), क्योंकि 'जैसा ग्राहक वैसा माल' तैयार होता है। तो भी यदि वे यत्न करें, तो जनता की रुचि इस ओर बढ़ा सकते हैं। हमारे यहाँ के पत्रों में जो थोड़े बहुत वैज्ञानिक विषयों पर लेख आते हैं, वे भी अधिकतर दैनिक व्यवहार उपयोगी विषयों पर होने चाहियें।

लेखक:–वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखना उतना सरल नहीं जितना समझा जाता है, और न ही वे लेख लेखक के लिये कभी व्यापारी-दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हुए हैं और न ही होने की सम्भावना है। वर्ष या छः मास में आने वाले एक दो लेखों से इस विषय में रुचि नहीं बढ़ाई जा सकती। आजकल हिन्दी–साहित्य का विकास करने के लिये बहुत से यत्न हो रहे हैं, और हमारे यहाँ बहुत उच्च श्रेणी के ग्रन्थ भी तैयार हो चुके हैं, तब यह भी आशा रखनी चाहिये कि वैज्ञानिक विषयों की ओर भी लोगों की दृष्टि जायेगी।

उच्च २ कोटि के ग्रन्थों का समूह बढ़ रहा है। तो भी सब से अधिक आवश्यक अपनी क्रमिक पुस्तकों की रचना है। यह कार्य सर्वांग–सम्पूर्ण विद्वानों के बिना कोई नहीं कर सकता। सम्भवतः वे लोग इस कार्य को निम्न श्रेणी का समझें, क्योंकि इस में मान, प्रशंसा और प्रसिद्धि नहीं मिलती। अतः इन बातों की ओर यदि प्राथमिक शिक्षा के प्रणेता ध्यान देंगे, तो शिक्षा की नींव दृढ़ होगी, और हम पाश्चात्य राष्ट्रों के साथ, जो सुधार की चोटी पर पहुंचे हुए हैं, चल सकेंगे।

रसायन–शास्त्र

उस का नित्य व्यवहार में क्या उपयोग है ?

उषाकाल के शान्त समय, हमारे घर से थोड़े अन्तर पर स्थित रोमन कॅथॉलिक चर्च की प्रार्थना का घण्टा ज़ोर २ से बज रहा था। घण्टे का गंभीर और भव्य नाद उस शान्त वातावरण में गूँज उठा। मेरी नींद खुल गई और मैं बिछोने से उठ बैठी। घण्टे के नाद की ध्वनि बहुत मीठी मालूम होती थी। वह घण्टा पुरातन रासायनिक कला का द्योतक था। उस ध्वनि ने मेरे कानों को आकर्षित कर लिया था, तो भी मेरी चक्षुओं में नींद भरी थी, अतः उस की कारीगरी के सम्बन्ध में मुझे कैसे विचार आता? उषाकाल में, जो माताओं के लिये विशेष महत्त्व का समय होता है, मैं उठ बैठी और मेज़ पर रक्खी छोटी रेडीयम की घड़ी में समय देखा। चाबी देते २ अन्धेरे में भी चमकने वाली घड़ी का चिह्नभाग (डायल) "मैं बहुत अप्राप्य द्रव्यों से बना हूँ, इतना ही नहीं, अपितु मॅडिम क्यूरी जैसी जगत्–प्रसिद्ध वैज्ञानिका के श्रम का फल हूँ", ऐसा कुछ गर्व से कह रहा था। इसी प्रकार घड़ी के ऊपरी अन्य भागों ने भी कहा कि, सोना, ताँबा, सीसादि धातुओं पर भिन्न २ प्रकार के रासायनिक प्रयोग होने के बाद वे कैसे बने। सोनार की भट्टी की सब विशेषताओं और खनियों से बाहिर आने के अनन्तर लौहादि धातुओं पर उष्णता, शीतता आदि भिन्न २ रासायनिक प्रयोग हो कर वे कैसे तैयार हुए, यह वे मूकपन से कह रहे थे। परन्तु आजतक हज़ारों बार इस घड़ी को मैं ने हाथ में लिया, तो भी मुझे उन से वैज्ञानिक बातचीत करने का अवकाश नहीं मिला।

बिछोने पर से नीचे गिरी हुई चादर उठा कर मैं ने ठीक रख दी। घड़ी की तरह ही पलंग की पीतल की चौखट और स्प्रिंग्स धातुकार की रासायनिक कारीगरी की साक्षी दे रहे थे। गद्दी, सिरहाना, चादरादि वस्तु भी लङ्काशायर की मिलों की प्रयोगशाला की वायु खाकर बाहर पड़ी थीं। अभी तक कमरे में अन्धेरा था, दीया जलाने से दूसरों की नींद खुल जायेगी, इस लिये टटोलते २ कोने में रखी हुई इटॅलियन संगमरमरी मेज़ पर रक्खी दीयासलाई जला कर मैं ने गैस का चूल्हा जलाया। मेज़ का सादा पत्थर भी निसर्ग की रसायनशाला में तैयार हो कर आया है। आदमी के बहुत प्रयत्नों के बाद निर्माण की हुई दीयासलाई और गैस के चूल्हे के रासायनिक ईंधन के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या? ॲल्युमिनियम जैसा धातु प्राप्त करने के लिये रासायनिक प्रयोगों की बहुत आवश्यकता है। ॲल्युमिनियम के बर्तन में पानी—रासायनिक यौगिक (solvent)—डाल कर आग के ऊपर रख दिया। पानी उबालने के अनन्तर स्विस् गाय के दूध से एक इंग्लिश कम्पनी का रासायनिक क्रियाओं से बनाया हुआ 'ग्लॅक्सो का चूर्ण' चमच (जिसे बनाने के लिये भी रासायनिक क्रिया का बहुत उपयोग होता है) से घुलाया, उस के अनन्तर वह मिश्रण हिला कर थर्मॉस की बोतल में भर दिया। यह बोतल भी तैयार करने के लिये रसायनकला का ही भरपूर उपयोग कारीगरों ने किया है। यह कार्यक्रम पूरा होने के अनन्तर मैं पुनः एक बार बिछोने पर लेटी। उषाकाल में बिछोने पर शान्त, आँखे मूंद कर पड़ रहने में रात की शान्ति के बाद, संसार के बंद पड़े व्यापार पुनः प्रारम्भ होने का शोर सुनना बहुत आह्लादकारी मालूम होता है। परन्तु ऐसी स्थिति में सुस्ती से लेटे कुछ पंद्रह मिनिट ही हुए थे कि, पिंघूड़े में मुन्नी का संगीत प्रारम्भ हुआ।

शीघ्रता से उठ कर मैंने पहले तैयार किया हुआ दूध जर्मन रसायनशाला में निर्माण हुई काँच की बोतल में भर कर उस को रासायनिक क्रियाओं से शुद्ध किए रंगीले रबर की टूटी लगा दी।

गोद में पड़े २ मुन्नी दूध पी रही थी कि, मैं उस का बिछोना ठीक करने लगी। उसका छोटा सा पिंघूड़ा, उस में छोटी सी गद्दी, रबर का सिरहाना, मोमजामा, गुलाबी ऊनी शाल यह सब वस्तुएँ रसायन कला की गवाही दे रही थीं। कमरे में प्रकाश अब बढ़ने लगा। सूर्य की कोमल किरणों ने, काँच युक्त खिड़की (यह भी रासायनिक क्रियाओं से ही बनी हुई है) में से भीतर आ कर कमरे को उज्ज्वल किया। दूध से तृप्त हो कर मुन्नी उनींदी हुई। उस को सुलाकर मैं ने नित्य कार्य प्रारम्भ किया।

हमारे स्नानगृह की प्रत्येक वस्तु, नीचे के रंगीले और चमकीले फ़र्श, अंग्रेज़ी टूटी, जर्मन बेसिन और अमेरिकन टुथपेस्ट रसायनकला की उपयुक्तता भली प्रकार सिद्ध कर रही थीं। मेरे मसूड़े (दन्तवेष्ट) कुछ कोमल हैं, उन को दृढ़ करने के लिये मुझे रासायनिक पद्धति से बनाया हुआ लोशन भी प्रयोग करना पड़ता है। अतएव नित्य के सभी सामान का यथा योग्य उपयोग कर के मुख प्रक्षालन के अनन्तर मैं ने रसोई में प्रवेश किया।

रसोई में ही रसायन शास्त्र का उद्गम होता है। यदि मुझ से कोई पूछे कि संसार की सब से पुरानी रसायनशाला कौन सी है, तो मैं रसोई की ओर ही अँगुली दिखाऊँगी। उदाहरणार्थ जिस गैस के चूल्हे पर मैं ने चाय के लिये पानी उबाला उस आधुनिक चूल्हे की बात तो छोड़ दीजिये, परन्तु उस के भीतर

जलने वाली आग भी क्या रसायनिक क्रिया की द्योतक नहीं है ? चाय के उपकरणों को एकत्रित करते समय जर्मनी में तैयार हुए उन सुन्दर प्यालों, प्लेटों पर हुए रासायनिक संस्कार, किसी की दृष्टी से छुटकारा नहीं पा सकते। परन्तु सुप्रसिद्ध मराठी कवि केशवसुत लिखते हैं " प्रतिदिन देखने से मनुष्य अन्धा हो जाता है " वैसी ही मेरे जैसे की स्थिति होती है। चाय का चूर्ण डाल कर चायदानी में छान लिया, और प्यालों में विलायती खाण्ड की टुकड़ी डाल दी। यह टुकड़ी बनाने के लिये और उस में उचित स्वाद लाने के लिये रसायनकला ही कारणभूत हुई है। मेरी चाय तैयार हो रही थी कि मुन्नी के पिता भी घर आये। नित्य के अनुसार गप्पें लगाते २ चाय और डबल रोटी खाने लगे। परन्तु उस समय वह रोटी आस्ट्रेलियन आटे पर कितने प्रकार के रासायनिक प्रयोग के बाद बनी होगी, इसकी तनिक भी कल्पना हमारे मन में नहीं आई।

हमारा चाय पान हो रहा था, उस समय समाचार–पत्र वाले ने टाईमस् का ताज़ा अंक भीतर फेंका। इस समाचार–पत्र के कागज़ का कच्चा माल नॉर्वे में, और पत्र आस्ट्रिया के कारखाने में, उस की मुद्रा इंग्लण्ड और मसी जर्मनी में बनी है। इन सभी के उत्पादन में रासायनिक कला का भाग है। मेरे पति 'टाइम्स' पढ़नें में व्यग्र हो गए और मैं श्रृंगार करने लगी। कंघी आदि सभी उपकरण मैं ने जिस ड्रेसिंग टेबल पर रक्खी थीं, उस टेबल के रंग की शोभा रासायनिक द्रव्यों से ही तैयार हुई है। फ्राँस में तैयार हुई कंघी, ब्रुश और सेल्युलॉइड का क्लिप, बालों के लिये आवश्यक विलायती तैल, पॅरिस का पाऊडर, बेलजियम का शीशा आदि सब वस्तुएँ उस २ देश की रासायनिक कुशलता की साक्षी दे रही थीं। मेरा बाल सँवारना पूरा हुआ ही था कि लल्ला, मुन्नी

का बड़ा भाई, आँख मलते २ और मेरा नाम पुकारते भीतर आया। वह सदा मुख धोने में आलसी था, और इस लिये उठने से होने वाली बुड़बुड़ाहट, ओव्हलटीन का पूरा डेढ़ प्याला और हंटले पामर के दो बिस्कुट पेट के अन्दर जाने तक, होती रहती थी। ओव्हलटीन जैसी पुष्टता के लिये प्रसिद्ध पेय और रुचिकर बिस्कुट रसायन कला के अभाव से कैसे उत्पन्न होते ?

बच्चों को सैर जाने में क्या कभी आलस्य होता है ? उस पर रात के बारह घँटों के बन्दीवास के बाद वे बाहर जाने के लिये कितने उत्सुक होते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं। अतः लल्ला जैसा शरारती लड़का उस का अपवाद कैसे करता ? दौड़ते २ वह कमरे के भीतर गया और अमेरिकन रासायनिक के श्रम का द्योतक अपना नकली रेशम का सेलर-सूट लाया। "आगे चल कर मैं नावक बनूँगा", ऐसा वह सभी को घमण्ड से कहता था। शानदार कपड़े चाहियें, परन्तु बूट पहनने का तो उसे आलस्य है। अब भी वह वैसे ही नंगे पाँव भागने वाला था परन्तु मैंने उस के 'बाटा' के रासायनिक क्रिया से अति कोमल किये हुए चमड़े के बूट, रासायनिक द्रव्यों के द्वारा बनाया हुआ 'कोबरा' का सुन्दर लाल पालिश लगा कर ठीक कर दिये, तभी तो उसने अपने पाँव में डलवा लिये। मुन्नी भी अब जग गई। वह इतस्ततः टिकटकी से देखती हुई, अँगूठे के रसपान करने में व्यग्र हो गई। उन दोनों बच्चों को तैयार कर के रासायनिक द्रव्यों से रंगी हुई गाड़ी में डाल कर घूमने को भेजा। बच्चों के बाहर जाने के बाद मेरा मुख्य कार्य दीवान-खाने की व्यवस्था करना और सफ़ाई रखना था। दीवानखाने का सुसज्जित लकड़ी का सामान और दीवारों पर लगे हुए तैलरंग

और जलरंगों के, सुप्रसिद्ध चित्रकारों के खींचे हुए और सुनहरी आबनूस की चौखट में जड़े हुए भव्य और सुन्दर चित्र, और कोने में रक्खे हुए बुद्ध के ब्रॉज़ के पुतले की सजावट भी रासायनिक अनुसन्धान के ऊपर निर्भर है। इन वस्तुओं को देखते समय उन की कला मन मोहित कर लेती है, परन्तु जिन द्रव्यों पर उस कला का जीवन निर्भर है, उन की तनिक भी जानकारी हमें नहीं होती।

इतने में नौकर ने आकर कहा कि, "मर्क का ॲसिड" डाल कर स्नानागार साफ कर दिया है। कपड़े लेकर मैं स्नानघर में गई। मेरी बारीक साड़ी और जम्पर रसायन शास्त्र के बहुत युगों की प्रगति के द्योतक थे। स्नान करते समय पीयर्स सोप की मधुर सुवास और स्निग्धता से मन और शरीर को बहुत आनन्द प्रतीत होने लगा। यदि रसायन शास्त्र का अस्तित्व न होता तो इस आनन्द से हम दूर रहते। स्नान समाप्त करने के बाद मैं रसोई की ओर चली गई। यह मेरी अत्यन्त आह्लादकारी प्रयोग शाला है। पाक-शास्त्र की रसायन कला का मर्म मुझे पूर्णतया मालूम है और इसीलिये रसायनशास्त्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में अन्य बातों को तो मैं आखों से दूर कर सकती थी, पर इस का महत्त्व पूरी तरह मेरे हृदयंगम हो गया था।

मानवी शरीर के सर्व व्यापार केवल स्नायुबल पर निर्भर नहीं हैं, परन्तु विशिष्ट ग्रन्थियों में बहने वाले स्राव से देह के विशिष्ट भागों पर रासायनिक क्रिया और प्रतिक्रिया होकर इन्द्रियों को गति मिलती है, इस बात को आजकल सब सुशिक्षित गृहिणी जानती हैं। पाक-शास्त्र का ध्येय ऐसा अन्न निर्माण करना है, जिस से इन स्रावों के लिये पोषक सत्त्व अधिक मात्रा में शरीर में जायें।

परन्तु साथ ही पाक-कला से भिन्न २ रुचि भी उत्पन्न की जाती है, जिस से भोजन स्वादु, सहज पचने वाला और शरीर पोषक हो। इस प्रकार की मसालेदार वस्तुएँ बनाना भी अतिशय जिम्मेदारी और महत्त्व का कार्य है। खाद्योज (व्हिटॅमिनस्) के अन्वेषणों ने हमारे नित्य के आहार पर कितना प्रभाव डाला है, यह देखिए। हम चावल के साथ खाई जाने वाली चटनी में निम्बु का प्रयोग प्रतिदिन करते हैं। अब मुझे निम्बु से केवल रुचि लाना अभिप्रेत नहीं, परन्तु निम्बु में जीवनसत्त्वों का और अम्लता का शरीर पोषण के लिये कितना उपयोग होता है, इस का भी मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया है, इसीलिये मैं पूर्वानुसार निम्बु घण्टा २ पहले काट कर नहीं रखती, किन्तु भोजन के कुछ समय पूर्व ही काटती हूँ। बहुत समय काट कर रखे हुए निम्बु के जीवन-सत्त्व नष्ट हो जाते हैं। आजकल हमारे भोजन में अंकुरित धान्य के पदार्थ भी अधिक प्रमाण में होते हैं, उन के द्वारा 'माल्ट' की आवश्यकता हमारे भोजन में अपने आप पूरी होती रहती है। संक्षेपतः चटनी, आचारादि साधारण पदार्थों से लेकर जलेबी जैसे बड़े २ पकवानों तक कोई भी पदार्थ हो, उस पर रासायनिक क्रिया का उपयोग होता ही है। वस्तु तैयार होते समय रंग, रुचि और स्वाद में होने वाले परिवर्त्तन रसायनकला के ही द्योतक हैं। या यूँ कहिये कि पाककला, रसायनकला का घरेलू और आद्य नाम है।

मेरी रसोई पूरी होने से पहले ही बच्चे घूम कर आ गये। उन के स्नान के बाद हम भोजन करने बैठे। लल्ला को दही शक्कर के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता। पहले चावल समाप्त होने के बाद दही थाली में पड़ने तक वह बहुत चिल्लाता रहता है। ऐसा

कहा जाता है, कि दही के रासायनिक गुणों से अन्त्रों में रहने वाले रोगाणुँ नष्ट होते हैं, और पचनशक्ति बढ़ती है। लल्ला के बारे में तो यह सर्वथा सत्य है। किसी भी समय पूछिये, "मुझे भूख नहीं" ऐसा कभी नहीं कहेगा।

जिस प्रकार लल्ला को श्रीखण्ड (दही शक्कर) की, वैसे ही उस के पिता को पान की चटक है। कत्था, चूना, केशर, मसालेदार सुपारी आदि व्यंजन डाल कर 'त्रयोदशगुणी' पान बनाने की कला में, वे पूर्णरूपेण कुशल हैं। निर्धनों की कुटियों से लेकर ठेठ राजमहलों तक सभी के जिह्वा का विषय पान का रासायनिक रहस्य कितने लोगों को मालूम है? परन्तु लल्ला के पिताजी दृढ़ विश्वास से यह कहते हैं कि, "इस का ठीक मर्म मैं जानता हूँ"। यूरोपियन अधिकारियों द्वारा कचहरी में अपने इस स्वभाव के लिये जंगलीपन का प्रमाण-पत्र न मिले, अतः वे पान के रासायनिक गुणों की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करते रहते हैं।

भोजन के अनन्तर तो लगभग डेढ़ बजे तक अर्थात् बच्चों के खाने तक हमारा समय बहुत आनन्द में बीतता है। क्योंकि उन के साथ मनमाने खेल खेलने के लिये माँ को इसी समय सुविधा होती है, इसीलिये वे बहुत आनन्दित होते हैं। इधर मुन्नी पेट के बल उलटी। एक हाथ में सेल्युलाइड का रंगीन छोटा सा नाद करने वाला खिलोना और दूसरे हाथ में रबड़ की चिड़िया ले कर बार २ मुँह में डाल कर खिलखिलाती थी। दूसरी ओर उस का बड़ा भाई, अभी खरीदा हुआ, जर्मन-निर्मित चमकदार इंजिन ले कर मुझे संसार के प्रवास के लिये साथ ले कर निकल पड़ा। रसायनशास्त्र की प्रगति के द्योतक इन खिलौनों से, बच्चों के आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। हर चार दिनों के

बाद मुन्नी को नये रंग का खिलौना चाहिये। लल्ला की कल्पनाशक्ति अच्छी बढ़ चुकी है। वह जो यन्त्र देखता है, उस से ही खेलना चाहता है। रेडियो से खेलने के लिये भी वह बहुत हठ करता है। खेलते २ मुन्नी को नींद आ गई। इंजन वाले लल्ला की चहुँ ओर दौड़धूप हो रही थी। बच्चों के कपड़ों पर काढ़ने के लिये मैंने अपनी सीने के सामान की पेटी खोली। भीतर के रेशमी टुकड़े, D. M. C. का रंगीन रेशम, आकृति निकालने के लिये आवश्यक रंग, इतना ही क्यों, किन्तु साधारण सेल्युलाइड के बटन, सिलाई करने से पहले मोटे कपड़े को मुलायम करने के लिये रक्खा हुआ मोमबत्ती का टुकड़ा, सूई आदि वस्तु भी रासायनिक शास्त्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में साक्षी दे रही थीं। कपड़ा निकाल कर मैं ने दो फूल काढ़े इतने में सीढ़ी से धड़धड़ गिर पड़ने की ध्वनि और ज़ोर की चीख़ सुनाई दी। हाथ का कार्य छोड़ कर मैं सीढ़ी की ओर दौड़ी। इंजन के पीछे ड्रायव्हर सीढ़ी से उलटता पलटता नीचे गिरा। सीढ़ी के किनारे में लगे जंगले से सिर टकरा कर उस में शोथ हो गई, और कपाल के ऊपर का भाग छिल गया। विशेष कुछ हानि न हुई यही भाग्य की बात थी। लल्ला को ऊपर लाकर रासायनिक पद्धति से बनाई हुई स्टिप्टिक् पेन्सिल उस के व्रणों पर लगाई, और उस के ऊपर उसी विधि से तैयार की हुई जन्तु-नाशक औषध डालने तक वह ज़ोर २ से चिल्लाता रहा। मैंने शाम को सिनेमा ले जाने का उस से प्रण किया, तभी वह चुप हुआ। वह फिर कोई शरारत या उपद्रव न करे, अतः मैं ने अलमारी से उस के चाचा की विलायत से भेजी हुई, सुनहरे मुख्य पृष्ठ की सचित्र गाथा की पुस्तक बाहर निकाली। पुस्तक की मनोहर छपाई, अच्छे रंगीन चित्र और आकर्षक

जिल्द तथा लोगों की अभिरुचि को बढ़ाने वाली वस्तुओं को रसायन शास्त्र द्वारा कितनी उत्तेजना मिलती है, यह स्पष्ट दीख रहा था। चित्र देखने से लल्ला अपने सारे दुख भूल गया। मैं पुस्तक में से एक गाथा उसे समझा रही थी कि टेलिफ़ोन की घण्टी के ज़ोर २ से बजने से मेरी समाधि भंग हुई। मैं बहुत क्रोधित हुई और कुछ उत्सुकता से टेलिफ़ोन के पास गई। जाते समय इस छोटे से 'यन्त्र दूत' को बना कर घर २ भेजने में रासायनिक को कितना परिश्रम और चातुर्य से काम लेना पड़ा होगा इस का तनिक भी विचार मेरे मन में न आया। टेलिफ़ोन मेरी सखी सरला से आया था। उस ने चलाये हुए 'महिला मंडल' में "प्रौढ़ शिक्षा के लिये सिनेमा का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिये," इस सम्बन्ध में चर्चा होने वाली थी। उस में भाग लेने के लिये उस ने मुझ से आग्रह पूर्वक विनती की। उसे सम्मति देकर मैं ने फ़ोन बन्द किया। चित्र देखते २ लल्ला सो गया था। उसे बिछौने पर सुलाकर मैंने पुनः अपना कार्य प्रारम्भ किया।

पाँच बज गये थे। लल्ला पुनः ताज़ा होकर खिड़की में पिताजी की बाट देख रहा था। प्रत्येक क्षण उस की अधीरता बढ़ रही थी। अन्ततः मोड़ पर मोटर के श्रृंग की ध्वनि सुनाई दी। लल्ला दौड़ कर नीचे गया। मोटर द्वार के सामने खड़ी थी, मानों रसायन शास्त्र को जन साधारण तक प्रसिद्ध कर रही थी। रबर के टायर्स, बॉडी, भीतर के लोहे के घूमने वाले स्प्रिंग्स, विद्युत् मोटर, काँच की छोटी खिड़कियाँ, श्रृंग बजाने वाला बेकलाईट, गद्दी पर का नकली चमड़ा, मोबिल ऑयल, तैल, गॅसोलिनादि प्रत्येक भाग और पदार्थ "रसायन शास्त्र के अन्वेषणों से हम पैदा हुए" ऐसा कुछ कह रहे थे। कपड़े पहन कर हम सिनेमा जाने लगे, मोटर ॲसफ़ॉल्ट और

कॉंक्रीट के रास्तों पर अधिक वेग से दौड़ रही थी। कहाँ पुरातन काल के धूल से भरे हुए ऊँचे नीचे रास्ते और कहाँ आजकल के रासायनिक द्रव्यों से बनाए हुए समतल रास्ते। सायंकाल की पवन ने हमारी इस यात्रा को बहुत आनन्ददायक बना दिया था। इतने में पीछे की ओर से ॲम्ब्युलॅन्स का घण्टा सुनाई दिया। तत्काल रोगी के ऊपर डॉक्टर शतशः वर्षों के अनुभवों की रासायनिक कृतियों से निर्मित औषध लेकर किस प्रकार उपचार करेंगे इसका एक अस्पष्ट सा चित्र मेरी आखों के सामने खड़ा हो गया।

हमारी मोटर थिएटर के पास पहुँची। मेरे पति ने जेब में से नोट और सिक्के निकाल कर टिकट खरीदीं। वे नोट और सिक्के तैयार करने में उन पर हुए भिन्न २ रासायनिक संस्कार कितने जनों को विदित होंगे?

हम भीतर जा बैठे। रेडियो का गाना बन्द होने पर चित्रपट (फ़िल्म) प्रारम्भ हुआ। कथा अच्छी होने के कारण मेरा सारा ध्यान पर्दे की ओर खिंच गया। चित्र के फ़िल्म धो कर तैयार करने की रीति, ध्वनि क्षेपक प्लेट, फ़ोटो तैयार करने की कृति आदि सर्व साधन और क्रिया, रसायन शास्त्र के अभाव से कहाँ तक यश प्राप्त कर सकतीं? खेल सामाप्त हुआ। हम मोटर में बैठे, रास्तों पर की विद्युत् की बत्तियों की चकचकाहट हर चौराहे पर राहदारी (traffic) सुचारु रूप से चले, इस लिये हरित और रक्त प्रकाश की योजनादि का मूल कारण रसायन शास्त्र की क्रियाएँ ही थीं। विद्युत् प्रकाश के अभाव से सिनेमाग्रह, रास्ते और घरों की शोभा कैसे बढ़ती?

रात के भोजन में प्रातः काल के भोजन से यत्किंचित् ही अन्तर था। इसलिये इस बारे में अधिक कहने की क्या अवश्यकता?

रात्रि के भोजन के अनन्तर खाद्य पदार्थों और बर्तनों को ठीक रख कर सोने से पूर्व स्नानग्रहादि में फिनाईल का पानी डालना, यह अनैच्छिक और उतना ही महत्त्व का कार्य शेष रह गया था। यह फिनाईल रासायनिक कृति से बनाया हुआ, कितना सस्ता और उपयोगी जन्तु नाशक है !

मैं कमरे में आ कर दैनिक डायरी में 'रसायन शास्त्र की छाया में' बीते हुए साधारण दिन की वास्तविकता लिखने लगी। पड़ोसी रामजी को वह पढ़ने के लिये देने का मेरा विचार है। इस का कारण मैं अभी बताती हूँ। कल ही उन की कन्या केमिस्ट्री लेकर बी. एस्सी., पास करने के लिये हठ कर रही थी। वे कह रहे थे, "कान्ता, आगे चलकर तेरा विवाह होगा, इस आर्थिक शिक्षण की तुझे क्या आवश्यकता है, और उस में विशेषतः केमिस्ट्री का, इस का ग्रहस्थ में क्या उपयोग है?" कान्ता ने मेरे सामने शिकायत की। अब आप ही बताईये कि हमारे नित्य के व्यवहारों में आवश्यक, इतना ही नहीं अपितु जीवन में सौंदर्य और सुखसुविधाएँ उत्पन्न करने वाले इस शास्त्र का कितना महत्त्व है?

रसायन शास्त्र का सांस्कृतिक महत्त्व

उठते बैठते किसी समय भी और बहुधा प्रयोजन न होते हुए भी आधुनिक शिक्षा पद्धति को गाली देना आजकल का एक सर्वसामान्य शिष्टाचार ही बन गया है। यदि ऐसा न किया जाय तो अद्यावतपन (up-to-dateness) की कमी प्रदर्शित होगी ऐसा कुछ लोगों को भय रहता है। योग्यता हो या न हो, स्त्री हो या पुरुष हो, प्रत्येक व्यक्ति अपने यहाँ की आधुनिक शिक्षापद्धति के उपहास में भाग लेना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। परन्तु आजकल सचमुच किस प्रकार से हानि हो रही है और निश्चित रूप से वह शिक्षण क्रम से है या पाठ्य क्रम से, अध्यापकों से कितनी है और संरक्षकों से कितनी, इसका दिग्दर्शन करना प्रस्तुत स्थान पर कर्तव्य नहीं। क्रमिक शिक्षण-पद्धति में मनोविज्ञान या व्यवहार दृष्टि से जीवन संग्राम के युद्ध के लिये वैज्ञानिक शिक्षा दे कर, एकही रचना से, समाज तथा राष्ट्र के लिये एक उत्तम और उपयुक्त इकाई (unit) तैयार करने वाला, कौन सा शिक्षण अधिक फलद्रूप होगा, इस का विचार इस लेख में करना है। इस दृष्टि से विचार करने पर रसायन—शास्त्र को अग्रस्थान देना होगा यह निर्विवाद है।

विचार चेतना उत्पन्न करनेवाली, कार्य कारण भावों की योग्यता को हृदयंगम करानेवाली, सार्वजनिक और शीघ्रता से ग्रहन करानेवाली, अन्ततः हितकारक, व्यवस्थित, तथा क्रमबद्ध शिक्षा सचमुच समाज और राष्ट्र कार्य के लिये उपयुक्त इकाई निर्माण करनेवाली

होगी। परन्तु साथ ही कितनी ही दूसरी बातें ऐसी हैं कि यदि वह विशिष्ट प्रकार से पढ़ाई जायें तो ही वे वैयक्तिक दृष्टि से शिष्य की विशिष्टता विकास करने के लिये उपयुक्त होता है। इन में से बहुत सी बातें रसायन-शास्त्र पढ़ने से सहज ही स्वभाविक बन जाती हैं।

व्यक्ति को विशेष स्वरूप देने वाला यदि कोई प्रमुख विज्ञान है, तो वह रसायनशास्त्र ही है। परन्तु बहुधः लोगों में इस सम्बन्ध में बहुत अज्ञान है। वास्तविकता से देखने पर इस शास्त्र के द्वारा कितने प्रकार के, बुद्धि को आश्चर्यचकित करने वाले, कार्य हो रहे हैं। वैसे ही आधुनिक जीवनक्रम में सुख सुविधाओं को परस्पर एकत्रित करने से जीवन जितना अधिक सुखावह हो सके उतना करने के लिये इस शास्त्र के अनुयाइयों के सतत प्रयत्न जारी हैं। रसायन-शास्त्र पक्षपात नहीं करता। इस शास्त्र द्वारा जिन सुख सुविधाओं का अन्वेषण होता है, वे सभी को एक जैसी उपयोगी होती हैं। इतना ही नहीं किन्तु इस शास्त्र के पढ़ने से, पढ़ते समय, भिन्न २ प्रकार के सहकारी लोगों से संगठन होने के कारण व्यक्तिगत गुण बढ़ते हैं और दोष कम होते हैं। रसायन-शास्त्र पढ़ते समय प्रयोगशाला में भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभवों से मनुष्य की बुद्धि अधिक बढ़ती है और वह जीवन संग्राम में साहस से सामना करने योग्य बनता है।

कर्तव्य निष्ठा.—यह शास्त्र मनुष्य स्वभाव के भिन्न २ दोष-रूपी धब्बे और ऊँचनीच दूर करने वाली रेती (file) है। यह पढ़ने से मनुष्य का स्वभाव उज्जवल होता है, "अपने आप को धोका न दो," ऐसी यह शास्त्र घोषणा करता है। 'दूसरे को धोका देना स्वयं को धोका देना है।' इस प्रकार की

भी यह शास्त्र शिक्षा देता है । उपर्युक्त शिक्षा की सत्यता निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगी । कल्पना कीजिये, आप को एक द्रव्य दिया गया है, जाँच करके उस का निश्चय करना है । उस की साधारणतयः रीति यह है कि उस द्रव्य की ऊपरी जाँच के बाद उस का पुष्टि-परीक्षण किया जाये । ऐसा न करने से उस वस्तु को ठीक २ बताने में धोका हो जाता है । परन्तु बहुधः कुछ चीज़ों को ऊपर से ही देखने पर उन का ज्ञान हो जाता है । ऐसे प्रसंगों पर " किस लिये पुष्टि-परीक्षण (confirmatory tests) का झंझट करें, यह सल्फ्यूरिक ॲसिड है, वह तो हमें स्पष्ट दिखाई देता है, और बेरिअम क्षार के साथ मिश्रण करने से उस का अम्ल (acid) में एकरूप न होने वाला श्वेत चूर्ण (powder) नीचे बैठ जाता है, यह हमें मालूम है, तो फिर समय क्यों नष्ट किया जाय ? ऐसे ही कह दें कि यह सल्फ्यूरिक ॲसिड है । " यदि इस प्रकार हम कहें और संयोग से अपनी परीक्षा में पास भी हो जायें, तथा शिक्षक को धोका दे कर आत्मप्रशंसा भी करते रहें, तो भी ऐसे समय, मिलने वाले अनुभव से हम दूर रहेंगे । और बहुधः इस के लिये अन्त में पश्चाताप करना पड़ता है ।

सर्वदा एक जैसा काल नहीं होता । कुछ समय सर्वथा अपरिचित पदार्थ की प्रमाण-बद्ध परीक्षा करनी पड़ती है । पाँच सौ मिलिग्राम बेरिअम सल्फेट कितना तलछट (नीचे बैठना) चाहिये, यह परीक्षा करनी हो तो, पहले किए हुए प्रयोग को न जाँचने से इस समय जो कष्ट, चिन्ता और साशंक मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, वह स्पष्ट बतलाती है कि, "उस समय तुम ने शिक्षक को नहीं परन्तु अपने आप को धोका दिया था । नहीं तो आज तुम ने सहलता से इस समस्या को हल कर लिया होता । "

जब २ मनुष्य दूसरे को धोका देने का प्रयत्न करता है तब २ वह स्वयं ही धोका खा जाता है । अतः निष्ठा पूर्वक कार्य करना, एक अत्यावश्यक गुण है, यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है ।

छोटी २ बातों के सम्बन्ध में भी दक्षता.—ऊपरी दर्शन से साधारण प्रतीत होने वाली वस्तुओं की ओर भी विशेष ध्यान देना रसायन-शास्त्र का सब से बड़ा सिद्धान्त है । इस पर आचरण न करने से बहुत हानि होती है। उदाहरणार्थ एक ही समय एक मनुष्य को दो पदार्थों की प्रमाणिक परीक्षा करनी हो, तो ऐसे समय उसे अतिशय सावधानीपूर्वक, सूक्ष्मदृष्टि से कार्य, करना चाहिये। यत्किंचित् भी असावधानी या सुस्ती से कार्य बिगड़ जायेगा । यदि एक बर्तन में काम आने वाली डण्डी (rod) दूसरे बर्तन में डुबोई जाय, तो सब गड़बड़ हो जायेगी । हम समझेंगे कि एक बर्तन में रखी हुई काँच की डण्डी दूसरे बर्तन में डुबोई जाये तो उस के साथ कौन सा बड़ा परिवर्तन हो जायेगा ? परन्तु इस से कई बार ०.०५ मिलिग्राम तक चूक हो जाती है, और योग्य निर्णय नहीं मिलता । (इसी ०.०५ मिलिग्राम जैसी सूक्ष्म भूलों के कारणों का अन्वेषण करने से ही आजकल हम को नयी २ सुविधाएँ मिल गई हैं)। ऐसी असावधानी से बहुधः भयंकर हानियाँ हो जाती हैं, इस लिये ऐसी असावधानी से हुई भूल को सुधारने के झंझट में न पड़ कर प्रारम्भ से ही छोटी दीखने वाली बातों के सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखना अधिक श्रेयस्कर होगा ।

आत्मसंयम.—परिमाण और पृथक्करण विचित्र प्रकार से आत्म संयम की शिक्षा देते हैं । उदाहरणार्थ किसी का पृथक्करण लगभग समाप्त हो चुका है, केवल द्रव्यों को तोलना रह गया है। ऐसे समय चिमटी से प्याली गिर जाती है और भीतर का सब द्रव्य

नष्ट हो जाता है। इस प्रकार घण्टों या दिनों के श्रम क्षण में नष्ट हो जाते हैं। इस से मनुष्य हताश होकर अपने पर क्रोधित होता है। 'किं कर्तव्य विमूढ' होकर वस्तुओं को उठा २ कर पटक देता है। और बहुत सी वस्तुओं के टुकड़े २ कर देता है। "यह मेरे लिये असाध्य है, यह विषय छोड़ देना ही अच्छा है" ऐसी धारणा कर बैठता है। परन्तु यह स्मशानवैराग्य बहुत काल तक नहीं रहता। थोड़े काल अनन्तर सब परिस्थिति उस के ध्यान में आती है और विचार करने के बाद वह समझता है कि, केवल हताश होने से ही कार्य नहीं चलेगा, वह पुनः करना आवश्यक है और वह भी स्वस्थ चित्त के साथ। अन्यथा दूसरी किसी हानि की सम्भावना हो सकती है। इसलिये निराश न होकर पुनः एक बार प्रयोग का प्रारम्भ करना चाहिये। क्या यह छोटी सी शिक्षा है? जीवन संग्राम में अपयश मिलने के ही प्रसंग अधिक होते हैं, किन्तु उनका सामना कर के जो धैर्य और निश्चय से कार्य करेगा, वही ऊँचा उठेगा।

स्वच्छता.—पृथक्करण-कला केवल असावधानता को ही नष्ट करती हो ऐसा नहीं, किन्तु वह कार्य में स्वच्छता की चसक भी उत्पन्न करती है। अस्वच्छता से पृथक्करण में कैसी भूलें होती हैं, यह ऊपरिनिर्दिष्ट उदाहरण से आप को विदित हो गया है। जिसका स्वभाव शान्त पानी पर भी तरंगें देखने का होता है, उसे प्रत्येक वस्तु का अव्यवस्थितपन और अस्वच्छता दीखने लगती है, और अन्ततः वह स्वच्छता के इतना आधीन हो जाता है कि किसी वस्तु में तनिक भी मैलापन उसे सहन नहीं होता। रसायन–शास्त्र पढ़ने वाले को व्यवस्थितपन का मानों व्यसन ही लग जाता है और वह प्रत्येक कार्य भली प्रकार करता है।

'क्षुद्र' कार्यों की विशेषता.—रसायन-शास्त्र हमें शिक्षा देता है कि, "स्थूल दृष्टि से क्षुद्र या निम्नश्रेणी के कार्य को स्वयं करने में अपनी मान हानि नहीं"। प्रत्येक कार्य भली प्रकार करने के लिये कुशलता आवश्यक है और वह कुशलता सुशिक्षित लोगों की सहायता बिना अनपढ़ लोगों में होनी असम्भव दीखती है। 'प्रत्येक मनुष्य को अपने उपकरण स्वच्छ रखने चाहियें,' यह इस शिक्षा का पहला पाठ है। नये विद्यार्थी को उपकरण धोना क्षुद्र कार्य प्रतीत होता है, क्योंकि उस के घर में बर्तन साफ करने का कार्य सेवक करते हैं। इस शूद्र-कार्य के करने को वह अपना अमूल्य समय नष्ट करना समझता है। सेवक लोग स्वच्छता की ओर बहुत ध्यान नहीं देते और न दे सकते हैं। उन से स्वच्छ किये हुए उपकरणों में प्रयोग करने से वे असफल होते हैं और पुनः करने पड़ते हैं। पहले किसी नये विद्यार्थी को उस के उपकरण साबुन और नल के पानी से धोने के लिये कहिये, बाद उन्हें पॉटॅशिअम डिक्रोमेट और सल्फ्यूरिक ॲसिड के मिश्रण से धोने के लिये कहिये तथा तीन बार नल के पानी से और अन्त में तीन बार स्वच्छ किये हुए पानी से। यह सब करने में वह कितना नाक भौं सिकोड़ता है, यह स्पष्ट दीखेगा। परन्तु इतना श्रम करने के बाद जब वह काँच के बर्तन विशेष रूप से चमकने लगते हैं, तेजःपुंज दीखने लगते हैं, तब उसके चहरे पर की मुसकराहट कहने लगती है कि, "इस में कुछ विशेष है, श्रम सफल हुआ है"। जिसे अपने सब उपकरण, इतना ही नहीं, वरन् हाथ धोने की चिलमची (sink) भी प्रतिदिन स्वच्छ करनी पड़ती है, वह कब किसी कार्य को अपना न समझ कर धुत्कार देगा? अपितु वह किसी भी कार्य को करने के लिये सदा उद्यत रहेगा।

दक्षता.—साधारणतयः रसायन-शास्त्र का विद्यार्थी उत्साही होता है। कई प्रत्येक पग पर उसकी दक्षता में शंका करते हैं, जो व्यर्थ है। यह शिक्षा ही ऐसी है, कि उसे आलस्य कभी आने ही नहीं देती वरन व्यवस्थिता का महत्त्व बता देती है। जहाँ की वस्तु तहाँ रखना और समय पर कार्य करना रसायन-शास्त्र का नियम है। क्योंकि प्रयोग के समय ठीक स्थान पर बोतल न रखने या उन के 'कार्क' व्यवस्थितरूप से बन्द न करने से अथवा प्रयोग के बाद उपकरण धोने में आलस्य करने से वे विकृत हो जाते हैं, और दूसरे दिन उपयोग करने का प्रसंग आने पर बोतल खुली रहने के कारण, उस के अन्दर के पदार्थ में विष्कलित अवस्था देख कर विद्यार्थी के सामने दुविधा उपस्थित हो जाती है। उस के दुष्परिणाम उसे मालूम होते हैं और अन्ततः वह पुनः वैसी असावधानी के लिये अपने कान पकड़ता है।

शांतवृत्ति.—रसायन शास्त्र की दृष्टि से शान्तवृत्ति यही है कि उतावलेपन को छोड़ देना और क्षमता रख कर, केवल शोर न मचा कर कार्य करना। हम कभी २ सोचते हैं कि रासायनिक प्रयोगों में हम अपना समय व्यर्थ नष्ट करते हैं। परन्तु वैसा नहीं है। कुछ क्रियाओं में आवश्यक समय लगता ही है, उतना समय न देने से कुछ कमी रह जाती है। उदाहरणार्थ बाज़ारू नमक या स्फुटिका के शुद्धिकरण को लीजिये। यदि आप किसी ढंग से शीघ्र कार्य पूरा करना चाहेंगे तो वह असम्भव है। वैसा करने से शुभ परिणाम प्राप्त नहीं होगा और वही प्रयोग पुनः एक बार करना पड़ेगा। जीवन में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं कि जिन से हम ऊटपटांग रीति से निपटना चाहते हैं। इस आलस्य के कारण दुगने कार्य का दण्ड भुगतना पड़ता है।

पड़ोस धर्म और सहायता करने की प्रवृत्ति.—पृथक्करण करने वाले प्रत्येक जन को अड़चनें उपस्थित होती ही हैं, वे बहुधा अकस्मात् उद्भव होती हैं और उचित समय पर यदि दूर न की जायें तो बहुत हानि की सम्भावना रहती है। पृथक्करण करने वाला विद्यार्थी, पड़ोसी की सहायता करने के लिये तैयार रहता है, क्यों कि उसे समय का मूल्य पूर्णरूपेण ज्ञात है। वह केवल मौखिक सहानुभूति दिखा कर ही शान्त नहीं रहेगा, परन्तु उसे कृति में रूपान्तरित करेगा। वह उचित समय पर अपने मित्र की सहायता करेगा। वह कोई भी कार्य करते समय, दूसरे के कष्ट का ध्यान रखेगा। उदाहरणार्थ, प्रयोगशाला में बहुत उष्णता के कारण वह खिड़की खोलने के विचार में है। खोलने से पूर्व वह अपनी कृति से दूसरे को कष्ट होगा या नहीं, यह सोचेगा और अन्य जनों का अनुमोदन लेगा और तदनन्तर खिड़की खोलेगा। किसी को भी यदि कष्ट होता है, तो बहुत उष्णता होने पर भी वह खिड़की नहीं खोलेगा, क्योंकि इस की हानि उसे ज्ञात है। नवीन विद्यार्थी प्रयोग-शाला में प्रवेश करते ही सब बातें अपने लिये सुविधापूर्ण कर के, अभय हो कर कार्य का प्रारम्भ करता है। वहाँ की परिस्थिति का वह विचार ही नहीं करता। मनुष्य में जन्म से ही जो स्वार्थवृत्ति रहती है, वह उसी का ही अनुसरण करता है। परन्तु कुछ समय व्यतीत होने के अनन्तर उस को पड़ोस धर्म का महत्त्व अपने आप ज्ञात होने लगता है। दूसरे को अड़चन उपस्थित होते ही अपने हाथ का कार्य छोड़ कर वह उस की सहायता को दौड़ेगा। क्यों कि उस की यह पूरी धारणा है कि अड़चन उपस्थित हुए बिना कोई किसी को नहीं पुकारता। इस क्षेत्र में 'गीदड़ आया रे, दौड़ो' ऐसा झूठ कोई नहीं चिल्लाता। प्रमाण के लिये परिमाण परीक्षा करने के समय का उदाहरण लीजिये। ऐसे समय

मूषा (प्याली) उठाने में ऊपर का ढक्कन सावधानी से ही क्यों न रखा हो, फिसलने लगता है। उष्ण होने के कारण हाथ से उठाना अशक्य होता है। ऐसी अड़चन के समय वह पड़ोसी को चिमटी (सन्दंशनी) लाने को कहता है, क्योंकि दूसरा कोई मार्ग ही नहीं होता। पड़ोसी 'ज़रा ठहरीये' कभी नहीं कहता। अपितु वह अपने प्रयोग की चिन्ता न कर के, अपना मूल्यवान समय नष्ट कर के भी उस की सहायतार्थ जाता है। क्यों कि उसे यह विदित है कि यदि वह ठीक समय पड़ोसी की सहायता न करेगा तो उस बेचारे के ५–६ घण्टे का श्रम व्यर्थ हो जायेगा। इस के सिवाय उसे एक और नवीन आपत्ति में डालना होगा। जो सम्प्रदाय का विरोध करना है। वस्तुतः स्थिति ऐसी होती है कि कुछ विकट अड़चन उपस्थित हुए बिना कोई किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करता। हम देखते हैं कि निर्धन निर्धन की, अन्धा अन्धे की और रोगी रोगी की सहायता करता है। यह नियम रसायन–शास्त्र पर भी ठीक २ लागू होता है। प्रयोग की पुनर्वृत्ति करना कितना महान संकट है, यह प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। और इसी लिये प्रत्येक जन इस प्रकार की अड़चने निवारण करने के लिये हर समय उत्सुक रहता है।

सहकार्यता.—प्रयोगशाला में कार्य करने से दूसरा एक उत्तम गुण जो स्वभाव बन जाता है, यह है 'अपना और पराया भाव भूल कर सहयोग से कार्य करना'। प्रायः पहले एक दो वर्ष प्रत्येक को जोड़ी २ से कार्य करना पड़ता है (वे जोड़ियाँ प्रायः चतुर शिक्षक बनाता है या नामों की सूची के अनुसार बना दी जाती हैं)। कोई अपरिचित मनुष्य अपनी

जोड़ी में आता है, ऐसे समय जात पात भूल कर के एक हो कर कार्य करना पड़ता है, और प्रयोग करने में साथी की ग़लतियों के लिये हमें भी अपशब्द सहन करने पड़ते हैं। जो अपशब्द चुप चाप सहन कर, साथी के आने पर (जो भार तोलने आदि के लिये गया होता है) शिक्षक के दिये हुए ज्ञान सुमन हमें देने पढ़ते हैं। अपशब्द सुनते समय "यह बात मैं ने नहीं की, मेरे साथी ने की" इस प्रकार कहना सहकारी-नियम के विरुद्ध है। यह नियम रसायन-शास्त्र के विद्यार्थी के अन्तःकरण में भली प्रकार बैठ जाता है। ऐसा न करने से 'दूसरे के साथ निभाने' का अत्युत्तम गुण नहीं आता और कभी सहकार्यता से कार्य नहीं होता।

काम की पद्धति.—किसी भी प्रयोग सामग्री को एकत्रित करते समय व्यवहारिक झंझटों से सामना करने पर उस से दूर निकलने के लिये जो मार्ग निश्चित करना पड़ता है, उस का शिक्षण भी रसायनशास्त्र उत्तम रीति से देता है। यह शास्त्र हाथ में लिये हुए कार्य के अनुसार आचरण करने की शिक्षा देता है। हाथ में लिये हुए कार्य में नियमन का परिणाम निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा। मानों परीक्षा में एक विशेष समय पर समाप्त करने के लिये एक साथ ३-४ प्रयोग दिये गये हैं (सदा ऐसा ही होता है)। यह सब व्यवस्थित रूप से, समय पर पूर्ण करने के लिये विद्यार्थी को बहुत बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। कौन सी बात किस समय पर करनी है, यह पहले ही निश्चित करना पड़ता है, नहीं तो तृषा लगने पर कुआँ खोदने का प्रसंग आ जायेगा, और ठीक परिणाम मिलने तक वह यत्न व्यर्थ रहेगा। बहुत सा कार्य समयाभाव से वैसे ही पड़ा रह जाता है।

इन बातों को देख कर कौन कहेगा कि, "रसायनशास्त्र विद्यार्थी को दूरदृष्टि का आदेश नहीं देता" ?

मितव्यय.—रसायन शास्त्र अधिक व्यय करने वाले स्वभाव के ऊपर रामबाण उपाय है। मितव्ययता तो इस शास्त्र की सब से बड़ी शिक्षा है। नव विद्यार्थी पहले २ प्रयोगशाला में द्रव्य परिमाण का विचार नहीं करता, कारण कि "अपना क्या जाता है ? गया तो जाने दो, पाठशाला की हानि होगी। शिक्षक बिना कारण चिल्लाता है। मेरी जेब से कुछ थोड़ा ही जायेगा ?" इस प्रकार से उस की विचार धारणा होती है। प्रयोग में द्रव्य अधिक पड़ जाये तो वह निकलना बहुत कठिन है और वैसा करने में दुगना समय लगता है तथा अन्त में अपना कार्य ठीक होने में भी शंका रह जाती है। इस प्रकार की जानकारी होने के बाद मितव्यय से कार्य करने का स्वभाव चुपचाप बनाना पड़ता है, परिणाम यह होता है कि वह प्रयोग के अनन्तर एकत्रित हुए मिश्रण निर्भय हो कर फैंक नहीं देता, क्यों कि इन में से भी पुनः नये २ योग बनाना सम्भव है और वैसा करने से कम व्यय होता है यह भी वह जानने लगता है। इस प्रकार के स्वभाव वाला रसायन शास्त्र का विद्यार्थी अमितव्ययी कैसे हो सकता है ?

कर्तव्य निष्ठा.—मितव्ययता, आत्मसंयम, उतावलेपन का अभाव, व्यवस्थितपन, स्वच्छता, कामचोरता का अभाव, कोई भी कार्य करने की तैयारी, इतना ही नहीं, अपितु छोटी २ बातों में ध्यान देने का स्वभाव, रुके हुए कार्य वाले की सहायता करने की प्रवृत्ति, कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित करने का स्वभाव, दूरदृष्टि,

सहकार्यता से कार्य करने की कला आदि गुण, जिस विषय से विद्यार्थी के मन में गढ़ जाते हैं, उस विषय की शिक्षणक्रम में आवश्यकता से कौन इन्कार करेगा ? यह सब एकदम नहीं होता। धीरे २ ही ठोस और टिकाऊ होता है। पहले २ दुविधा में पड़ा हुआ विद्यार्थी, इस स्वभाव के अनुसार, वर्ष के अनन्तर व्यवहार दृष्टि से उत्तम नागरिक बन जाता है।

सागर, सर्व समृद्धि का आगर

'पुष्कल धूली, खूब पवन, और उस के नीचे दबे हुए पानी का प्रचंड समूह (चाहे इसे हम सागर कहें)' ऐसा एक कवि ने पृथ्वी का वर्णन किया है। परन्तु आगे के विवेचन से स्पष्ट होगा, कि यह सत्य नहीं। उपरोक्त उक्ति पृथ्वी की विडम्बना है। केवल सागर को ही लीजिये, इस प्रचंड पानी के समूह में पृथ्वी के ९२ मूल तत्त्वों में से ३२ मूल तत्त्व स्वतन्त्र रूप से पाये जाते हैं, ऐसा संशोधनों से सिद्ध हुआ है। वैज्ञानिक ऐसी कभी डींग नहीं मारते कि सागर के विषय में सब ज्ञात है, परन्तु वे कहते हैं कि सागर एक विचित्र गूढ़ है। केवल इतना सिद्ध हुआ है कि एक घन मील सागर के पानी में निम्नलिखित परिमाण में भिन्न २ द्रव्य मिलते हैं।

१२,८२,८४,४०३ टन ....लवण।
१,९९,४६,५२२ ,, ...मॅग्नेशियम क्लोराईड।
३,५८,२७० ,, ... ,, ब्रोमाईड।
१,४०० ,, ...फ़्लूओरीन (फ़्लोराईड के स्वरूप में)
९० ,, ...आयोडीन (coumpounds)
२,५०,००,००० रुपये .... लागत की चान्दी
३३२,००,००,००० रुपये ....की लागत का सोना

इन के इलावा अन्य सैंकड़ों द्रव्य कम अधिक परिमाण में मिलते हैं। रेडियम धातु भी समुद्र में मिलती है, इतना ही नहीं, किन्तु वह भूतल के पत्थर की अपेक्षा समुद्र के तल में लगभग दुगने

परिमाण में है। प्राय: यह सागर में मिलने वाली नदियों के पानी के साथ बह जाती होगी। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सागर के भीतर होनेवाली अनन्त क्रियाएं रेडियम के प्रभाव से ही होती हैं।

सागर केवल पानी का प्रचंड समूह ही नहीं, परन्तु वह भिन्न २ असंख्य वस्तुओं की एक विचित्र खान है। मनुष्यदेह सागर से ही निर्माण हुआ है, हमारी हड्डियों और मांस में सागर का कुछ न कुछ अंश अवश्य है, इतना ही नहीं हमारे रक्त में भी समुद्र का अंश है। कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा कहना है कि यदि आज मनुष्य उच्च श्रेणी का प्राणी है, तो भी बहुत पहले (पृथ्वी की बाल्यावस्था के समय) वह समुद्र में जेलीफ़िश जैसे गोते खाने वाले कीट या मच्छली जैसा प्राणी था। उस समय हमारे शरीर में जो समुद्र का अंश प्रविष्ट हुआ था वह आज तक हमारे रक्त में, प्रत्येक बूँद में, हृदय की हलचल के साथ आन्दोलन पाता है।

रक्त में उस क्षुद्र से समुद्रांश के बिना हमारा जीवित रहना भी असम्भव है। वास्तविकतः वैज्ञानिकों (biologists,) का ऐसा कहना है कि, एक समय यह सब जीव–वस्तुएँ जलचर अर्थात् समुद्र में बढ़ने वाली थीं और आजकल पृथ्वी पर संचार करने वाले अर्थात् भूमिचर प्राणी के सब से पहले पूर्वज कभी तो १४ रत्नों के समान समुद्र से ही ऊपर आये होंगे। उपरिनिर्दिष्ट विचार-क्रम को पुष्ट करने वाले अनेक उदाहरण (दैविक नहीं) मिल सकते हैं। इस विधान की परिपुष्टी प्राणीमात्र के रक्त और समुद्र के पानी के आश्चर्यकारक साम्य के आधार पर की जाती है। परन्तु वह आधार बहुत बलवान है, प्रयोगसिद्ध है। कारण यह कि जमे हुए रक्त से जो एक पानी जैसा बिना रंग का द्रव बहता है, प्रोटीन को छोड़कर उस के और समुद्र के पानी के गुण धर्म

लगभग एक से ही होते हैं। इस रक्तवारि (मिश्रण) में लवण, फ़ास्फ़टस्, कार्बोनॅटस् और आयोडीन का परिमाण समुद्र के पानी के द्रव्यों के परिमाण के लगभग बराबर है।

रक्तस्राव से (व्रणों से या अन्य किसी कारण से) नष्ट हुए रक्त की कमी केवल शुद्ध पानी से पूरी नहीं होती। ऐसा करने से वह प्राणी मर जाता है, परन्तु केवल पानी के स्थान पर लवण के विशेष परिमाण में (लगभग समुद्र के परिमाण जैसे) बनाये हुए विलयन के इञ्जेकशन् से प्राणी के जीवित रह सकने की सम्भावना है। इस के बहुत उदाहरण हैं। (आजकल डॉक्टर लोग, बहुत रक्तपात या स्राव हो जाने पर लवण का पानी, भिन्न २ प्रकार से देह में भर देते हैं)। आजतक यदि भिन्न २ घटनाओं पर मनुष्य ने समुद्र को गालियाँ दी होंगी या डर से उस को देवता भी माना होगा तो भी यह सब समृद्धि का दाता है, यह निर्विवाद है। उस के उदर में अनेक द्रव्यों का सञ्चय है। यदि इस ने कुछ लोगों को स्वाहा किया होगा तो भी यह बहुतों का अन्नदाता है। इतना ही नहीं, अपितु वह कितनों ही को सम्पत्ति की चोटी पर बिठाता है। पुराण के १४ रत्नों का यह पिता है। यह लक्ष्मी का मैका है। कल्पना छोड़ कर व्यवहार की कसोटी पर जाँचने के लिये स्थूल २ दो चार उदाहरण लेंगे।

लवण और पोटॅश.—अलोने अन्न से मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। लवण कम खाने से रक्त वृद्धि कम होती है, यह बात सर्वमान्य है। लवण के रक्त में विशेष परिमाण में रहने से रक्त की स्निग्धता सम रहती है और रक्त प्रसरण सुचारु रूप से होता है। हमारे स्वेद में भी लवण होता है यह प्रत्येक अनुभव करता है। साधारणतयः प्रत्येक मनुष्य में लगभग ३२ औंस

स्वेद बाहिर निकलता है। स्त्री के स्वेद में ०·३ प्रतिशत और पुरुष के स्वेद में ०·४ प्रतिशत लवण होता है।

परन्तु लवण परिमाण से अधिक खाने पर विष समान प्राणघातक होता है, । अधिक लवन खा कर आत्महत्या करने का सहल उपाय आजकल चीन में बहुत स्थान पर दिखाई देता है। समुद्र का पानी पीने से कितनी विकट स्थिति होती है, इस की जानकारी तूफ़ान में अड़े हुए जहाज़ पर के नावक को ही मालूम होती है। वस्तुतः उस के शरीर में भी लवण होता है तो भी वह अधिक परिमाण में शरीर के भीतर एक रूप न होने से हानि होना निश्चित है।

'काले' समुद्र के सम्बन्ध में बहुत विचित्र आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं। इस का विशेष कारण यह है कि, यह समुद्र सब समुद्रों से विशेष लवणीय है। उपरोक्त आख्यायिकाओं के अनुसार मध्ययुगीन प्रवासियों ने बड़े चटकदार वर्णन किए हैं। वे कहते हैं कि इस के आसपास की विषैली गैसों के कारण इस सागर पर पक्षी उड़ नहीं सकते, इतना ही नहीं आसपास कोई भी वनस्पती नहीं उगती। कारण कि इस सागर में भिन्न २ क्षारों का इतना अधिक परिमाण है कि इस में मछलियाँ जीवित नहीं रह सकतीं। और मछलियाँ न होने के कारण बगुले जैसे पक्षी भी उस की ओर नहीं आते। मछलियाँ ही क्या किन्तु कोई भी प्राणी या वनस्पति इस के आसपास नहीं बढ़ सकती। कीट और वनस्पति के अभाव से अन्य पक्षी भी दिखाई नहीं देते। वनस्पति न बढ़ने का एक मुख्य कारण मीठे पानी का अभाव भी है। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है। यह एक रूक्ष प्रदेश है।

इतना होते हुए भी, जब १९३० में इस सागर के क्षार द्रव्यों का पूर्ण निश्चय हो गया, तब पॅलेस्टाईन पोटॅश नाम की कम्पनी खोली गई। उस कम्पनी का मुख्यतया उद्देश्य, खाने का पोटॅश लवण और ब्रोमीन निकालना ही घोषित किया गया। इस कम्पनी के पहले ४ वर्ष के कार्य काल में केवल एक ही मनुष्य रोगी हुआ। कहाँ गई वे विषैली गैसें? इतना ही नहीं अपितु उस स्थान की वायु अच्छी हो गई है, और वहाँ अब एक स्वास्थ्य स्थान भी बसाया गया है।

गणितज्ञों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि यदि कहीं से भी पोटॅश न मिले, तो भी यह समुद्र अकेला ही सारे संसार को २००० वर्षों तक पोटॅश दे सकता है। इसे ही समृद्धि कहते हैं।

आयोडीन.—हमें अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होनेवाला आयोडीन समुद्र से ही प्राप्त होता है। आयोडीन के बिना शरीर की उष्णता स्थिर रखना असम्भव है। इतना ही नहीं अपितु उस के अभाव के कारण हमें अपनी क्रियाओं का भी ज्ञान नहीं रहता और हम पागलों के समान परिश्रम करते रहते हैं। संक्षेपतः हम मूर्ख से बन जाते हैं। अमेरिकन जर्नल ऑफ् फ़ार्मसी में डॉ. ग्रिफ़िथ ने कहा है "आज जो व्यवस्थित रीति से कार्य हो रहा है, इस का मुख्य कारण हमारे शरीर की आयोडीन–ग्रन्थि और समुद्र का परस्पर सम्बन्ध है।"

यह अन्वेषण ४००० वर्ष पूर्व चीनी लोगों के द्वारा किया गया था, कि गलगण्ड रोग, शरीर में कुछ विशिष्ट द्रव्यों के अभाव के कारण होता है और वह सागर के किनारे से दूर रहने वाले लोगों को ही अधिकतर होता है। यह भी उन्होंने सिद्ध किया कि लवण, स्पंज, शेवाल और प्रवाल आदि इस रोग पर रामबाण उपाय हैं। इन

सब में आयोडीन का अंश होता है । आज हम जो उपाय गलगण्ड के लिये निकालते हैं वह सब चीनी लोगों के अन्वेषणों के अनुसार ही हैं।

ब्रोमिन.—आजकल आश्चर्यजनक बातें हो रही है । नये २ अन्वेषण किये जाते हैं । फल स्वरूप पुराने व्यवसाय नष्ट हो रहे हैं और नये नये व्यवसाय उन्नति पा रहे हैं । समुद्र के पानी से ब्रोमिन नामक मूलतत्त्व खोज निकालना भी आधुनिक सर्वश्रेष्ठ अन्वेषण है । दस वर्ष पूर्व ब्रोमिन केवल नमक क्षेत्रों में लवण निकालने के बाद शेष बचे पानी से निकाली जाती थी, या लवण की खनियों में एक विशेष क्षार से निकाली जाती थी । यह ब्रोमिन कुल केवल २० लाख पाउण्ड निकलती थी, और वह सब औषधों के लिये और तत्सम अन्य कारखानों के लिये पूरी होती थी । परन्तु जब इंजिन के धक्के कम करने के लिये मोटर गाडियों के इंधन–तैल के साथ इस का उपयोग होने लगा तब स्थूल दृष्टि से बहुत दिखाई देनेवाला ब्रोमिन का परिमाण सर्वथा अपूर्ण हुआ, और इंधन तैयार करने वाले दुविधा में फँस गये । अन्त में रसायन-शास्त्रज्ञों ने समुद्र का सहारा लिया । क्यों कि समुद्र के पानी में ब्रोमिन अत्यन्त अल्प प्रमाण में ही क्यों न हो, पर विद्यमान है, ऐसी उन की दृढ़ धारणा थी । किन्तु आश्चर्य यह है कि उन को अपने प्रयत्नों में आशा से अधिक लाभ प्राप्त हुआ । इतना ही नहीं, अपितु आज समुद्र जल से, पूर्व से दसगुना अर्थात् दो करोड़ पाउण्ड ब्रोमिन प्रत्येक वर्ष निकाला जाता है । समुद्र अथाह है और इच्छानुसार ब्रोमिन निकाला जा सकता है ।

सोना.—हवा की दुर्मिल गैसों (rare gases) वैसे ही दुर्मिल धातुओं (rare metals) के अन्वेषणों से, वैज्ञानिक दृष्टि से भी विलक्षण और अगम्य कितनी ही बातों का स्पष्टीकरण

हो गया। यथा समुद्र जल से ब्रोमिन निकालने की कृति है। इस कृति से समुद्र के कोष का द्वार खुल गया और समुद्र के भीतर उपस्थित अनन्त वस्तुएँ बाहर निकालना कठिन नहीं रहा। यह कृति मानों समुद्र मन्थन की मथनी है। केवल मथने वाला चाहिये। इस अन्वेषण से मुख्यतया रसायन–शास्त्र को ही लाभ हुआ, और रसायन–शास्त्रज्ञों को अब पूरा विश्वास होने लगा कि समुद्र कोष से कभी दृष्टि में न आने वाली द्रव्य राशि बेलचे से खोदी जा सकती है। उदाहरणार्थ—

समुद्र में सोना और चान्दी बहुत हैं, यह सब लोग जानते हैं। गणितज्ञों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रतिदिन ब्रोमिन निकालने के अनन्तर बचे हुए पानी में कम से कम तीन हज़ार रुपये के मूल्य का सोना होता है और वह पुनः पानी के साथ समुद्र में डाल दिया जाता है। यह सोना हाथ से गँवाना केवल अक्षम्य अपव्यय है। ब्रोमिन निर्माण पद्धति में सुधार होने के बाद दस वर्ष के भीतर ही उपरिनिर्दिष्ट हाथ से जाने वाला सोना निश्चित रूप से हाथ में आ जायेगा। इतना ही नहीं, अपितु अन्य मूल्यवान द्रव्य निकालना भी सम्भव हो जायेगा, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है। फ्लॉरिडा में हुए अमेरिकन केमिकल सोसायटी के अधिवेशन में यह भविष्यवाणी की गई थी। यह भविष्यवाणी अपेक्षा से अधिक शीघ्र फलद्रूप हुई। राई जितने सूक्ष्म परिमाण में ही क्यों न हो, समुद्र–जल से सोना और चान्दी निकाली गई है।

समुद्र–जल से सोना निकालने की विधि.—ऊपरोक्त सोना निकालना एक विशेष तत्त्व पर निर्भर है।

मूलग्राही तत्त्व.–पानी पर तैरने वाले सूक्ष्म सुवर्ण कणों पर गन्धकाम्ल डालने से वे विद्युत्मान होते हैं । उसी प्रकार जल के साथ आधे घुले हुए (collidal) पानी पर तैरने वाले, सुवर्ण कण गन्धक के कणों की ओर आकर्षित होते हैं । दोनों मिल कर पानी के तल पर बैठ जाते हैं । जिस पानी या मिश्रण में सोना और चान्दी होगी उस पानी पर यदि पारद के कण डाले जायेंगे तो भी वे कण सुवर्ण कणों के साथ मिल कर पानी के तल पर बैठे जायेंगे ।

प्रयोग.—उपरोक्त समुद्र–जल पर क्रिया करने से पानी के तल पर जमा हुआ अवशिष्ट, पानी में पुनः न मिल जाये, अतः उसे इस प्रकार से पृथक् करते हैं । जमे हुए पदार्थ में सीसे के छोटे २ टुकड़े मिला कर उन्हे मूषा में डाल भट्टी में उष्ण करते हैं । भट्टी में सोने के विना सब पदार्थ जल कर नष्ट हो जाते हैं । ऐसा होने पर सोने या चान्दी के कण मूषा में स्फटिक रूप में प्राप्त होते हैं । इस प्रकार सोने को एकत्रित कर लेते हैं । एक मेट्रिक टन समुद्र जल से लगभग ०·२ से १·२ मिलिग्राम तक सोना प्राप्त होता है । आज तक यह क्रिया व्यापार की दृष्टी से लाभदायक सिद्ध नहीं हुई, परन्तु भविष्य के बारे में क्या कहा जा सकता है ? आज कल ऊपर के प्रयोग से प्राप्त हुआ सोना दस गुना महँगा है । यदि ब्रोमिन प्राप्त करने की कृति में यह सहलता से मिलने वाली धातु न होती तो और भी महँगा होता । तो भी एक असम्भव को सम्भव करने वाली एक विचित्र कृति का प्रारम्भ हुआ है, क्या यह थोड़ी बात है ?

उपरोक्त विवेचन से 'सागर सर्व समृद्धि का आगर' इस उक्ति की सिद्धि होती है ।

——o——

खनिज द्रव्य और सांसारिक परिवर्तन

'खाना, पीना और आनन्द में सोना' यही मनुष्य धर्म है। ये सब वस्तुएँ सहज प्राप्त होना या प्राप्त करना जीवन का ध्येय है, और इस ध्येय की सिद्धि के लिये प्रत्येक जन अकेला या समूहरूप में अव्याहत प्रयत्न करता रहता है। ऐतिहासिक काल से ही नहीं अपितु मनुष्य की उत्पत्ति के समय से एक बात प्रमुखता से दिखाई देती है, कि जीवन-यापन के लिये आवश्यक फलमूल, पानी, लवणादि जो पदार्थ अपने पास हैं, उन्हें अपने आधीन बनाये रखने के लिये हत्या, मारपीट अत्याचार, बलात्कारादि विघातक, तिरस्कृत दुर्गुणों से काम लिया जाता रहा है। जब इस से काम नहीं चला, तब उपरोक्त आवश्यक वस्तओं से जीवन सुखी बनाने और सुखशान्ति रखने के लिये भूमि और खेती पर अधिकार की आवश्यकता पड़ी, और यही ध्येय बन गया। इस के लिये और भी लड़ाई, हत्यादि जारी रहीं। अन्त में संघशक्ति के लिये संघों और राष्ट्रों का अस्तित्व हुआ। भूमि, पशु और दास श्रीमानता के द्योतक बने। परन्तु सामाजिक या राजकीय मान बढ़ाने वाले साधनों में खनिज द्रव्यों का सर्वथा महत्त्व नहीं था।

जागतिक औद्योगिक क्रान्ति के अनन्तर अर्थात् लगभग १५० या १७५ वर्ष पूर्व राज्यकारणविज्ञों ने राष्ट्र की उन्नति के लिये मुख्यतः आवश्यक इस अदृष्ट किन्तु बहुमूल्य निधि की ओर दृष्टि फेरी। इस का परिणाम यह हुआ कि यूरोपियन राष्ट्रों में

व्यापार के सम्बध में परस्पर स्पर्धा उत्पन्न हुई, तथा प्रत्येक छोटा बड़ा राष्ट्र उपनिवेश प्राप्त करने के लिये ज़ोर से प्रयत्न करने लगा और प्राप्त करने के अनन्तर उसे अपने आधीन बनाये रखना उस ने ध्येय बना लिया।

स्थूल दृष्टि से देखनेवाले की यह समझ में नहीं आयेगा कि भिन्न २ स्थान पर बार २ हुए युद्धों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, मुख्य कारण यही खनिज द्रव्य थे। परन्तु वस्तुतः यही बात थी। कोई इसे स्वसंरक्षण कहे, कोई काले लोगों के सम्बन्ध में प्रेम बताये, या रेड इण्डियन वा अफ़्रीकन हबशिओं के संरक्षण का ढिंढोरा पीटे, या जागतिक उन्नति के सम्बन्ध में मनौदार्य बताये, पर सभी की दृष्टि उस देश की खनियों पर ही होती है। उदाहरणार्थ जापान का मान्चुको के प्रति प्रेम का कारण भी वहाँ की खनियों को अपने आधीन लाना है। इसी प्रकार हबशी लोगों की सुख सुविधाओं के लिये प्रेम बताने में इटालियन लोगों का मुख्य हेतु भी यही है।

धातु और खनिज द्रव्या की उपयुक्तता

बाष्प शक्ति के अन्वेषण से असम्भव कार्य भी सहज-सिद्ध बन गए हैं। रेलगाड़ी, आगबोट, डायनामो, मोटर, विमान, बिना तार का यन्त्र, रेडिओ, टेलिविजन जैसे साधन और भिन्न २ वायु भरने से रंग बिरंगा दिखाई देने वाला प्रकाश आदि वस्तुएँ आज अत्यन्त आवश्यक हो गई हैं। ये सब वस्तुएँ औद्योगिक और राजकीय दृष्टि से बहुत ही आवश्यक और महत्त्व पूर्ण हैं। आज इन सब आवश्यक प्रतीत होनेवाले भिन्न २ खनिज द्रव्यों और उन की खनियों पर निरांकुश अधिकार रखना ही राजकारण हो गया है।

(१) जीवन के लिये आवश्यक.—लवण, जल।

(२) खेती के लिये खाद.—फ़ॉस्फ़ेट्स, पोटॅश् (क्षार)।

(३) डायनामो, मोटर आदि शक्ति उत्पन्न करनेवाले यन्त्रों के लिये आवश्यक धातुएँ.—ताँबा, लौह और ॲल्युमिनियम ।

(अ) लौह और ॲल्युमिनियम.—जहाज़, पनडुब्बी, विमान, तोपों, बन्दूकों, गोले आदि के लिये आवश्यक हैं ।

(आ) ताँबा और जस्त.—तोप के गोले बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं ।

(४) संरक्षण और चढ़ाई के यन्त्रों के लिये आवश्यक धातुएँ ।

(अ) सीसा.—गोलियाँ और विद्युत् की बॅटरियाँ बनाने के लिये आवश्यक है ।

(आ) व्हॅनेडियम्, ज़िरकोनियम्, लिथिअम्, बेरिलिअम्, फ़ौलाद बनाने के लिये आवश्यक है ।

(इ) सिलेनिअम्.—धोके की सूचना देने वाले लैम्पों के लिये ।

(५) औद्योगिक यन्त्र और तत्सम कार्य के लिये आवश्यक धातु ।

लौह और फ़ौलाद.—रेलगाड़ी का सामान, मोटर, पुल, मकान, आगबोट और अन्य सर्व साधारण यन्त्र तैयार करने के लिये ।

ताँबा.—विद्युत् और तत्सम धन्धों, पीतल, कांसा छापने के लिये मुद्रा, मकान आदि के लिये ।

जस्त.—पीतल, रंग, गॅल्वनाइज्ड (जस्त के) पत्रे, और रबर को टिकाऊ और दृढ़ बनाने के लिये ।

सीसा.—रंग, प्लंबिंग, बॅटरी, बेअरिंग-मेटल, तथा बर्तनों के छिद्र बन्द करने वाले मिश्र धातु वा छापने की मुद्रा आदि के लिये ।

वंग (रांगा).—कांसी और डब्बों के बनाने के लिये ।

ॲल्युमिनिअम्.—विमान, मोटर, मकान, फ़र्निचर, रसोई के बर्तन, रंग और हलकी मिश्र धातु बनाने के लिये।

निकल.—विद्युत्-वाहिनी तारों का आच्छादन, फ़ौलाद, मुलम्मा, विद्युत् का ज़ोर कम करने वाली तारें (Electric resistance wires) और मोनेल वा निक्रोम मिश्र धातु बनाने के लिये।

सोना.—सिक्के वा आभूषण बनाने के लिये।

चान्दी.—सिक्के, दर्पण और छायाचित्रण के लिये।

प्लॅटिनम्.—आभूषण, वैज्ञानिक उपकरण, दंतवैद्यकीय सामग्री और वेग बढ़ाने के लिये-catalyst-(इस के मिलाप से पदार्थ तुरन्त बनते हैं।)

टंग्स्टन्.—विद्युत् दीपक की सूक्ष्म तार, द्रुत वेग से फिरने वाले यन्त्र और शस्त्र के लिये।

मॅन्गनीज़.—कठिन फ़ौलाद (तिजोरी, दरवाज़े आदि के लिये)।

क्रोमिअम्.—मुलम्मा और कठिन फ़ौलाद (कुदाल, बेलचा, हलादि के लिये) और न गलने वाले फ़ौलादी यन्त्रादि के लिये।

व्हॅनेडिअम्.—प्लॅटिनम् जैसे गति बढ़ाने वाले (catalyst) कठिन फ़ौलाद और द्रुत वेग से फिरने वाले यन्त्रों के लिये।

मॅग्नेशिअम्.—हलके भार की मिश्र धातु (विमान या मोटर के लिये आवश्यक), तोप की नली वा चमकने वाले तोप के गोले आदि के लिये।

पारद.—औषध, विषैले द्रव्य और वैज्ञानिक यन्त्रादि के लिये।

बेरिलियम और ज़िरकोनिअम्.—न गलने वाले, दृढ़, कठिन और न घिसने वाले यन्त्र (तोपें, बन्दूकें, विमान और द्रुतगति यन्त्र सामग्री) के लिये।

खनिज द्रव्यों के भिन्न २ देशानुसार विभाग

यूनायटेड् स्टेट्स्.—इस प्रदेश में अधिक परिमाण में प्राप्त होने वाले द्रव्य, कोयला, लौह, गन्धक, खनिज तेल, हीलिअम् वायु, नैसर्गिक वायु, (natural gas), ताँबा, सीसा, जस्त, ॲल्युमिनिअम्, मालिब्डिनम्, सुहागा और फॉस्फेट्स् हैं। परन्तु इस देश में मूल-धातु (key-metals) जैसे निकल, मॅन्गॅनीज़, क्रोमिअम्, टंग्स्टन् और व्हॅनेडिअम् अत्यन्त अल्प परिमाण में प्राप्त होते हैं, और इन के लिये इस प्रबल देश को दूसरों के आगे हाथ फैलाने पड़ते हैं।

कॅनडा.—कॅनडा देश यदि कोयला, निकल, सोना, चान्दी, ताँबा, सीसा, जस्त, ॲस्बेस्टॉस् आदि वस्तुओं से सुसंपन्न है तो भी लौह, और खनिज तैल के सम्बन्ध में इस की स्थिति बुरी है। परन्तु अभी की हुई जाँच और अन्वेषण से कुछ नवीन पदार्थ हाथ में आने की प्रबल आशा है। इस देश में अभी एक रेडियम् की खनी प्राप्त हुई है।

दक्षिण अमेरिका.—यदि दक्षिण अमेरिका ने कुछ वस्तु अन्य देशों को भेजने का ठेका ले रखा है, तो भी यह देश ऐसे खनिज पदार्थों की असमतुलता के कारण पिछड़ा हुआ है। इस देश में कोयला बहुत प्राप्त नहीं होता।

(अ) चिली.—यहाँ लौह और ताँबा भरपूर है।

(आ) ब्राझील.—यहाँ लौह और मॅन्गनीज़ बहुत मिलता है।

(इ) मेक्सिको.—यहाँ तैल, चान्दी, सीसा, जस्त, ताँबा, सोना, सुरमा और ग्रॅफ़ाइट पुष्कल परिमाण में हैं, तो भी यहाँ लौह और कोयले का परिमाण अत्यन्त अल्प या नहीं के समान है।

(ई) गिनीआ.—ब्रिटिश और डच गिनीआ के प्रान्तों में अॅल्युमिनिअम् पुष्कल परिमाण में है ।

(उ) कोलंबिया.—यह तैल और प्लॅटिनम् का बहुत बड़ा घर है ।

(ऊ) व्हेनेज़ुएला.—पेरू और इक्विडॉर में तैल की प्रचंड खनियाँ हैं ।

उत्तरी आफ्रिका.—यह देश खनिज सम्पत्ति में सुसम्पन्न है, तो भी औद्योगिक दृष्टि से स्वतन्त्रता से प्रगति करने में असमर्थ है ।

(अ) ईजिप्त.—यहाँ मॅन्गनीझ और तेल मिलता है ।

(आ) मोरक्को.—लोह और फास्फेट्स् मिलता है ।

(इ) व्होडेशिया.—यहाँ ताँबे और क्रोमिअम् की खनियाँ हैं ।

(ई) बेल्जिअन् काँगो.—यहाँ क्रोमिअम् और ताँबा मिलता है ।

(उ) नेगेरिआ.—राँगा मिलता है ।

(ऊ) मदगास्कर.—यहाँ ग्रॅफ़ाईट की खनियाँ हैं ।

(ओ) अल्जीअर्स और ट्यूनिस.—यहाँ तैल बहुत है।

दक्षिण आफ्रिका.—केवल दक्षिण आफ्रिका में स्वतंत्रता से औद्योगिक बल बढ़ाने के लिये आवश्यक खनिज पदार्थों का योग्य परिमाण मिलता है। इतना ही नहीं, अपितु यह देश दूसरे देशों को भी अपना प्लॅटिनम्, अस्बेस्टॉस, सोना और हीरा भेजता है ।

रशिया और सैबेरिया.—यहाँ कोयला, लौह, तैल, मॅन्गेनीज़ ताँबा, क्रोमिअम्, सोना, लवण और फ़ास्फ़ेट्स् की विपुल खनियाँ हैं, और पूर्वकाल से यह देश अन्य देशों को प्लॅटिनम् भेजता रहा है । यहाँ सब देशों से प्लॅटिनम् अधिक मिलता है ।

चीन.—चीन देश अनादि काल से खनिज सम्पत्ति के लिये सुविख्यात है, तो भी इस देश में केवल टंग्स्टन् और सुरमा ये दो ही धातु अधिक परिमाण में मिलती हैं। यहाँ का कोयला उत्तम श्रेणी का है। यदि आज इस देश के कोयले, लौह और सोने को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता तो भी भविष्य में उन्नति की सम्भवना है।

जापान.—यहाँ खनिज द्रव्यों की बहुत कमी है। इन खनिज द्रव्यों की कमी के कारण ही पड़ोस के विपुल परिमाण वाली लौह खनियों के माँचुको देश पर उस की गृध्र दृष्टी पड़ी। तदनुसार उस ने उस में प्रवेश भी किया है।

पूर्व समुद्र के टापू.—उपरोक्त अनुसार पूर्व समुद्र के टापुओं के द्रव्यों की सूची बनाना ठीक प्रतीत होता है।

(अ) फ़िलिपाईन टापू.—यहाँ लौह मिलता है।

(आ) ईस्ट इंडीज़ (डच)—यहाँ लौह और राँगा पुष्कल परिमाण में मिलता है। राँगा तो लगभग सब देशों को यहीं से जाता है।

(इ) मलाया स्टेटस्.—यहाँ राँगे की पुष्कल खनियाँ हैं।

हिन्दुस्तान.—हिन्दुस्तान में (वज़ीरस्तान और बर्मा जैसे सुसम्पन्न प्रान्त छोड़ कर) खनिज सम्पत्ति बहुत है। इतना होते हुए भी आज यह देश खनिज द्रव्यों के लिये बहुत निकृष्ट माना जाता है। आज भारत सब देशों को फ़ौलाद तैयार करने के लिये आवश्यक $\frac{3}{3}$ मॅन्गनीज़ भेजता है। यहाँ सर्व श्रेष्ठ लौह भी पाया जाता है। खनिज तैल और सोने की भी कमी नहीं है। यन्त्रों और इमारतों के सामान के लिये आवश्यक 'की-मेटल्स्' और 'रेअर मेटल्स्' भी यहाँ विपुल मिलती हैं।

आज मुख्य आवश्यकता तो सब धातुओं और वस्तुओं को उपयोग में लाने की है। सामग्री भरपूर है, किन्तु वस्तु-निर्माता की कमी है। और निर्माण करने के लिये आवश्यक सुविधाएँ भी चाहियें। उदाहरणार्थ टाटा कम्पनी है। आज भारत से यन्त्र, खेती के साधन और अन्य अनेक प्रकार की वस्तु तैयार करने के लिये आवश्यक कच्ची धातु परदेश में जाती हैं, और माल तैयार हो कर, बहुत कीमत से पुनः वापिस आता है। दाँत हैं, चने हैं, पर मुख नहीं चलता, आज ऐसी हमारी स्थिति है।

पश्चिम-यूरप.—यूरप में खनिज निधि अत्यन्त अल्प है, और जो है, वह भी व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक नहीं। आजकल वहाँ जो प्रचण्ड कारखाने हैं, वे आयात माल पर ही निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में भी वे कच्चे से पक्का माल तैयार करते हैं। लोगों का विशेष ज्ञान, पद्धतियुक्त और सुधारी हुई कृति और उन के लिये आवश्यक संघ ही इस के कारण हैं। अब एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यदि किसी कारण से उस देश की आयात बन्द हो जावे, तो सब की स्थिति अत्यन्त भयानक हो जावेगी। कारखाने बन्द हो जायेंगे और भट्टियों में बिल्लियाँ बच्चे देने लगेंगी, और आज इतने वर्षों से सारे संसार को अधिकार में रखने वाले औद्योगिक और राजकीय केन्द्र सर्वथा बदल जायेंगे। आज औद्योगिक केन्द्र का झुकाव पूर्व की ओर दीख रहा है।

खनिज द्रव्य निधि और देश का महत्त्व.—उत्तर अटलांटिक और भूमध्यसागर के किनारे पर बसे हुए देश कितने ही वर्षों से आज तक इतर प्रदेशों पर अपना अधिकार जमाये हुए हैं। परन्तु सदा ऐसा नहीं रहेगा। काल के प्रवाह के साथ देश की अवस्था में परिवर्तन होता है, यह नहीं भूलना चाहिये।

खनिज द्रव्यों में मूल और आधारभूत लौह और कोयला से सम्पन्न अत्यन्त कम देश हैं। सम्पन्नता की दृष्टि से गणना करने पर उन का क्रम यह है। (१) युनायटेड स्टेटस् (२) ग्रेट ब्रिटन (३) फ्रान्स (४) रशिया (५) सैबेरिया (६) जर्मनी (७) भारतवर्ष। मूल और आधारभूत खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से भारत को सचमुच भाग्यवान समझना चाहिये। इस देश में लौह और कोयले की खनियाँ पास २ होने के कारण भूगोल और व्यापार दृष्टि से इस का बहुत महत्त्व है। इस देश में दूसरों की अपेक्षा अधिक सस्ते भाव पर इन द्रव्यों की आयात निर्यात हो सकती है। और इस से लौह उत्कृष्ट और सस्ता बनाया जा सकता है। बेरेलिअम्, ज़िरकोनिअम्, थोरिअम्, सिरिअम् और रेअर अर्थ्स् जैसे अत्यावश्यक धातु यहाँ अच्छे विपुल परिमाण में मिलते हैं।

उपरोक्त अनुसार भिन्न २ तैल और गैसों की खनियाँ अधिकार में रखने वाले इतर देश भी उतने ही परिमाण में भिन्न २ चमत्कार कर के दिखाते हैं। आज युनायटेड् स्टेटस् इसी कारण से जगत्विख्यात हुआ है। आज वह अपनी इस पूँजी पर बहुत सा जागतिक यान्त्रिक कार्य (world's work) स्वयं पूरा करता है और निर्मित माल अपने जलयानों के द्वारा अन्य देशों को भेजता है। भारत में तैल की खनियाँ है और यह देश अमेरिका का अनुकरण करे तो सचमुच बहुत बडे परिमाण में प्रगति कर सकता है।

खनिज द्रव्यों की खनियों पर अधिकार जमाने के लिये राष्ट्रों में चलनेवाली कूटनीतियाँ नवीन नहीं और वे वैसे ही आगे भी चलती रहेंगी। दो तीन ताज़े उदाहरण देखिये।

और दूसरी वस्तुओं को प्रत्येक क्षण तैयार रखने के लिये आवश्यक खनिज द्रव्यों का बहुत बड़े और बढ़ते हुए परिमाण में उपयोग कर रहा है। यह निधि कम क्यों नहीं पड़ गई, इस के दो कारण हैं। एक तो दूरदृष्टि राज-नीतिज्ञों ने (इन की दूरदर्शिता वैज्ञानिकों जैसी नहीं होती) यह कार्य हाथ में लेकर इस व्ययी वृत्ति को परिमाण से बाहर नहीं जाने दिया। दूसरा कारण वैज्ञानिकों की कर्त्तव्यनिष्ठा है। वैज्ञानिक यदि भिन्न २ अन्वेषण न करते और संयोगात्मक वस्तु निर्माण न करते तो आज हमें अपनी अदूरदर्शिता के लिये "आप मर गये, दुनिया डूब गई" इस घातक रहस्य के अनुकरण का दोष लगाया जाता। मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा या इच्छा ही केवल उच्च होती है, परन्तु वैज्ञानिकों की कृति उस से अधिक मूल्यवान और ठोस होती है। कोई वस्तु निर्माण होने के अनन्तर कूड़ा (सामान्य दृष्टि से प्रतीत होने वाला) हम फेंक देते हैं, परन्तु वस्तुतः वह कूड़ा नहीं होता। उस में बहुत उपयुक्त वस्तुओं का कोष है, ऐसा वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है। इस कूड़े से भिन्न २ प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनाये जाने के अगणित उदाहरण हैं। निष्ठायुक्त सतत प्रयत्न ही इस का कारण है। यह तो वैज्ञानिकों को प्राप्त हुई बाल घुट्टी है। राष्ट्र की स्थायी सेना पर बहुत व्यय होता है, जो गले का आभूषण न हो कर बड़े पत्थर के समान है। ये सैनिक फ़ालतू समय आलस्यादि में गँवाते हैं, परन्तु वैज्ञानिकों की सेना वैसी नहीं होती। इस से किसी को भी हानि नहीं होती, सरकारी कोष को भी कोई धक्का नहीं पहुँचता, अपितु बहुधः उस में वृद्धि ही होती है। यह सैनिक अवेतन रूप से अव्याहत कार्य करते रहते हैं। उन के कार्य अखण्डित होते हैं। यह प्रत्येक सैनिक, विलास तो दूर, परन्तु तृषा और क्षुधा भी भूलकर अहोरात्र अपनी प्रयोगशाला में सतत कुछ

न कुछ करता रहता है । ये राष्ट्र के सचमुच आधारस्तम्भ हैं। इन का जितना मान किया जाये, थोड़ा है।

पृथ्वी के चित्र पर दृष्टि डालने से हमें यह विदित होता है, कि खनिज द्रव्यों का घर–जो राष्ट्र की नींव हैं—आज सब उत्तर ॲटलान्टिक महासागर के किनारे पर फैले हुए राष्ट्रों के अधिकार में है । और जब तक यह परिस्थिति बनी रहेगी तब तक वे राष्ट्र सारे संसार को अपने अधिकार में रखने में कमी नहीं करेंगे । इंग्लेण्ड और युनायटेड स्टेटस् खनिज द्रव्यों के समूह के कारण आज बहुत श्रीमान् समझे जाते हैं ।

भविष्यकाल.—आजतक आविष्कृत न हुई खनिज निधि की ओर ध्यान देने से यह विदित होगा, कि पृथ्वी के उदर में अथाह सम्पत्ति है, केवल, उसे बाहिर निकलने वाला चाहिये। आज रशिया के राज्य का मुख्य उद्देश्य अधिक परिमाण में तथा पद्धति अनुसार अपने देश में क्या २ मिल सकेगा, इस की देख रेख करना है। इस अन्वेषण से आज रशिया में, स्वप्न में भी न आने वाली खनिज द्रव्यों की खनियाँ मिल गई हैं, और भी बहुत मिलने की आशा है। उस सामग्री के बल पर आज रशिया दूसरे राष्ट्रों से आगे बढ़ने का यत्न कर रहा है।

जापान, पास के मॉन्चुको और चीन की ओर अपनी वक्र दृष्टी लगाये बैठा है । चीन और मॉन्चुको में भिन्न २ और उपयुक्त द्रव्यों की बहुत खनियाँ हैं । यदि जापान उन्हें प्राप्त कर ले, तो पूर्व में वह बहुत क्रान्ति उत्पन्न कर देगा। इतना ही नहीं, अपितु जापान इंग्लेण्ड के लिये नई उत्पन्न सौत दीखने लगेगा ।

भविष्य भारत.—एक काल में आज का दरिद्र भारतवर्ष 'सुवर्ण भूमि' नाम से कहलाया जाता था, उस समय सचमुच

स्थिति भी वैसी ही थी। भारत में उस समय अन्य देशों से अधिकतर परिमाण में सोना मिलता था, जो अन्य देशों को बहुत कम मूल्य पर भेजा जाता था। प्रत्येक मनुष्य के पास कुछ न कुछ सोना होता था, जो आभूषणों के रूप में दिखाई देता था। इस पूर्वकालीन 'सुवर्णभूमि' में यदि आज दूसरे देशों से अत्यन्त अल्प परिमाण में सोना निकलता है, तो भी देश के उदर में सोने जैसे, किंबहुना उस से भी अधिक मूल्यवान, नानाप्रकार के द्रव्य हैं। कल की लक्ष्मी आज राँगे का कंगन पहने बैठी है। परन्तु इस से निराश होने के आवश्यकता नहीं।

पहाड़ी, पर्वत, दर्रे, मैदान, झरने, प्रशान्त या द्रुतवाहिनी नदियाँ और नद इन में कोई भी एक साधन देश की उन्नति के लिये पर्याप्त है तब जिस देश में ये सब सुसम्पन्न हों, उस का क्या कहना? भारत में उपर्युक्त सब साधन भरपूर हैं, इतना ही नहीं, अपितु उन नैसर्गिक साधनों के अतिरिक्त खनिज द्रव्यों के आगर भरे पड़े हैं। इस से भारत की औद्योगिक प्रगति भली प्रकार होने में सहायता होगी। आज भारत में कोयला, लौह, मँगनीज़, ॲल्युमिनियम्, रेअर अर्थ्स्, टंग्स्टन्, ज़िर्कोनिअम्, थोरिअम्, बेरिलिअम् तथा अन्य भी कुछ आवश्यक धातुएँ भरपूर मिलती हैं। उन में से बहुत कुछ कच्चे माल की भारत से बाहर देशों को निर्यात होती है। यह निर्यात बन्द कर के सब माल देश में प्रयोग कर पक्का माल इतना उत्पन्न हो सकता है कि उसे ठिकाने लगाने की नई चिन्ता उत्पन्न होगी, और जो दूसरे देशों को भेजना ही पड़ेगा। परन्तु इस व्यापार से भी देश का कल्याण ही होगा।

जीवन और उस के साधक

जीवन का उद्गम.—मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? मेरा क्या होगा ? आदि प्रश्न सुलझाने के यत्न अनादि काल से आज तक भिन्न २ देशों के तत्त्ववेत्ताओं ने किये। परन्तु इन प्रश्नों का अभी समाधानकारक हल नहीं हुआ। ये जितने उस समय अगम्य थे, उतने ही आज भी हैं। जैसे २ हम किसी विषय पर अधिक विचार विनिमय करते हैं, वैसे २ ही वह अधिक जटिल दीखने लगता है। मनुष्य देह की भी यही अवस्था है। जीव, देह और आरोग्य के सम्बन्ध का अन्वेषण करने से उपरोक्त स्थिति सामने आती है। जितना विचार करें, उतने ही हम उलझ जाते हैं। यह प्रश्न जितना रसायनशास्त्र के क्षेत्र से बाहर है, उतना ही वह इस विद्या के अन्दर भी है।

आरोग्य.—शारीरिक रोग वा दुःख का निवारण अर्थात् आरोग्य है। वैद्यकशास्त्रज्ञों का यही कहना है कि भिन्न २ अवयवों का अपने २ नियोजित कार्य व्यवस्थित और नियमबद्ध रीति से पूर्ण करना, आरोग्य कहलाता है। दोनों का एक ही अभिप्राय है। परन्तु यदि वैद्यों से पूछा जाये, "शरीर क्या है ? देह तत्त्वों का पोषण और निवारण कैसे होता है ?" तो वे केवल सिर हिला कर सूचक रीति से रसायन–शास्त्रज्ञों की ओर उंगली उठा देते हैं। शरीर या मानवदेह, परमाणुओं के रासायनिक मिश्रण से निर्मित है, यह सब से पहले रसायन–शास्त्रज्ञों ने ही संसार को बताया है,

और साथ २ भिन्न २ परमाणु शरीर में कितने प्रतिशत हैं यह भी हमारे सामने रखा। इन परमाणुओं का विवरण निम्नलिखित है।

परमाणु	कितने प्रतिशत हैं	परमाणु	कितने प्रतिशत हैं
ऑक्सिजन	६५·००	सोडिअम्	०·१५
कार्बन	१८·००	कॅल्शिअम्	०·१५
हायड्रोजन	१०·००	मॅग्नेशिअम्	०·०५
नायट्रोजन	३·००	आयर्न	०·००४
कॅल्शिअम्	२·००	आयोडीन	अत्यन्त अल्प
फ़ॉस्फ़ोरस	१·००	फ्लुओरिन	,,
पोट्यॅशिअम्	०·३५	सिलिकॉन्	,,
सल्फ़र	०·२५	इ. इ.	,,

परन्तु इस विवरण पत्र से, देह किन साधकों (तत्त्वों) और कितने परमाणुओं से बना है, इतना ही समझा जा सकता है। अधिक से अधिक परमाणुओं का, बाज़ारू मूल्य के अनुसार, एक देह बनाने के लिये २ रुपये १२ आने व्यय होंगे। परन्तु रु. २–१२ आने की वस्तुएँ ख़रीद कर क्या हम एक मनुष्य शरीर तैयार कर सकेंगे? यदि ऐसा कर सकें तो अपुत्रों को सुविधा हो गई, ऐसा कहना पड़ेगा। उपरोक्त परिमाण केवल मिश्रण का है, उस में कृति नहीं बताई गई। उपरोक्त विवरण से देह की रचना का अनुमान नहीं हो सकता।

देह की आन्तरिक रचना.—प्रयोगानुसार प्राप्त हुई जानकारी से यह मालूम होता है कि शरीर की अन्तर्रचना परमाणुओं के रासायनिक मिश्रण से बनी हुई है। तो भी यह रासायनिक मिश्रण

और उन की सिद्धि, उन का परस्पर सम्बन्ध और यह मिश्रण किन किन नियमानुसार होता है, यह सब इतनी थोड़ी सी जानकारी से निश्चित नहीं हो सकता। रसायन-शास्त्रज्ञ अचल, आलस्यहीन प्राणी है। वह कभी निराश नहीं होता। उपरोक्त विवरण सिद्ध होने पर भी वैज्ञानिकों ने इस गोप्य बात को सुलझाने के सतत प्रयत्न जारी रखे। इस के सम्बन्ध में उन्हों ने तात्कालिक सिद्धान्त भी निश्चित किये। परन्तु इन के उन तात्कालिक सिद्धान्तों में बहु-व्याप्ति, अति-व्याप्ति और अव्याप्ति दोष थे। और भी जो स्थिर सिद्धान्त प्रतीत होते थे, अन्त में वे उतने स्थिर नहीं रहे। इस शरीर की अन्तर्रचना अभी तक गूढ़ ही है। ये मिश्रण कैसे बने हुए हैं, केवल इतना ही आज तक प्रयोग-सिद्ध हुआ है। वे ऐसे ही क्यों बनते हैं और किस प्रकार अपना ध्येय सिद्ध करते हैं? ये बातें क्या मनुष्य के प्रयत्नों के क्षेत्र से बाहिर हैं? परन्तु मनष्य ने अभी तक प्रयत्न नहीं छोड़ा। वे प्रयत्न सतत होते रहते हैं और होते रहेंगे, इस में संशय नहीं।

जब मनुष्य को अपनी और अपने आसपास की वस्तुओं की जानकारी होने लगी, तब "हम कैसे उत्पन्न हुए, हम कैसे जीवित रहते हैं, मृत्यु किसे कहते हैं?" ये प्रश्न उस के सामने आ खड़े हुए। प्रत्येक धर्म में ये प्रश्न अपने २ ढंग पर सुलझाने के यत्न किये गए। परन्तु इन विवरणों से वैज्ञानिक का समाधान नहीं होता।

तत्त्वों के एकीकरण और पुनः पृथक्करण द्वारा जाँच लेने पर ही कोई वस्तु मूर्त स्वरूप की ठहराई जा सकती है, यह आधुनिक भौतिक-शास्त्र का सिद्धान्त है। अब हम देखेंगे कि भौतिक-शास्त्र क्या कहता है? शब्द कोष ढूँढ कर कुछ जानकारी प्राप्त करना

साधारण मार्ग है। क्यों कि शब्दकोषकार किसी भी बात के सम्बन्ध में भिन्न २ लोगों के विचारों की छानबीन कर के थोड़े शब्दों में ही सर्वव्यापी व्याख्या कर देते हैं। परन्तु शब्दकोष में भी इस गूढ़ रहस्य का अधिक स्पष्टीकरण नहीं है। शब्दकोष केवल इतना ही बताते हैं, कि जीवन एक ऐसा गुण या लक्षण है, जिस से हमें प्राणी या सजीव वनस्पति और अन्य वस्तुओं का भेद मालूम होता है। परन्तु इस व्याख्या से जीवन वास्तव में क्या वस्तु है, इस का कुछ भी बोध नहीं होता। जीवन निसर्ग के अनुसार सब जीवित वस्तुओं को प्राप्त होने वाली स्थिति है, ऐसी इस की दूसरे प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। परन्तु उपरोक्तानुसार इस व्याख्या से भी कुछ विशेष बोध नहीं होता। यह गूढ़ प्रश्न का उतने ही गूढ़ शब्दों में उत्तर देना है। यदि जीवन के कारणभूत होने वाले परिवर्तन रासायनिक रूपान्तरों से ही होते हैं, परन्तु इन के द्वारा संसार की सजीव वस्तुओं का उद्गम और प्राणी–मात्र का जीवन कैसे उत्पन्न हुआ, इस का सर्वथा ज्ञान नहीं होता।

पृथ्वी की उत्पत्ति.—पृथ्वी के निर्माण के सम्बन्ध में बहुत से सिद्धान्त हैं। परन्तु सर्वमान्य यह है कि एक अतिशय प्रचण्ड शक्तिमान तारक सूर्य के पास से निकला, उस समय उस तारक के आकर्षण से सूर्य के ऊपर लू की लहरें उत्पन्न हुई और इस से सूर्य का कुछ भाग उस से पृथक् हो गया और आकाश में स्वतंत्रता से घूमने लगा। यही सूर्य से पृथक् हुआ तप्त गोलक हमारी पृथ्वी है। यह गोला जैसे २ ठण्डा होता गया, वैसे २ उस गोलक के केन्द्रीकरण से द्रव और घन (रूप) पदार्थ बन गये। परन्तु जिन का द्रव वा घन पदार्थ में परिवर्तन नहीं हुआ वे पदार्थ तरल रूप में ही रहे। यह तरल रूपी मिश्रण ही हमारी हवा है।

मनुष्य की उत्पत्ति.—उपरोक्त स्थिति के अनन्तर पृथ्वी के ऊपरी तल पर स्थित हलके भार के साधकों से बनी हुई वायु की क्रिया, प्रतिक्रिया से भिन्न २ परिवर्तन होते गये। ऐसे ही परिवर्तनों में से एक जीव का अवतार भी है। परन्तु जीव का कैसे निर्माण हुआ यह अभी रहस्य ही है।

जीवन रहस्य.—जीवन रहस्य का स्पष्टीकरण करने के लिये भी निसर्ग का ही सहारा लेना पड़ता है। कोषोत्पत्ति और उसे सचेतन करने वाले जीवन रहस्य का उपयुक्त स्पष्टीकरण अब तक कोई भी व्यवस्थित और शास्त्र सम्मत रीति से नहीं कर सका। ये कोषों (cells) साधकावयवों के सूक्ष्मकणों के विशेष परिमाण से बने हुए हैं, इतना ही आज निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

जीव उत्पत्ति.—ऐसा विचार है कि, कल्पनातीत आतिशय सूक्ष्म कणों से कोष तैयार होता है। यह निर्मित कोष धीरे २ बड़ा होता जाता है और एक विशेष आकार के अनन्तर अन्तर्स्थिति के अनुरोध से फूटता है और उस के दो टुकड़े बन जाते हैं। दोनों भाग भिन्न २ रस और साधक खोज कर अपना जीवन निर्वाह करने के लिये सर्वगुण सम्पन्न होते हैं। परन्तु इन में से एक कोष आलसी के समान बैठे २ जो कुछ मिलता रहा, उस पर ही तृप्त रहता रहा। परन्तु दूसरा कोष कुछ प्रयत्नशील होता और अपने लिये आवश्यक अन्न प्राप्त करने के लिये इतस्ततः घूमने का यत्न करता रहा। इन में से आलसी कोष की वनस्पतिजन्य जीवों में गणना हुई और जिस की प्रवृत्ति बाहर घूम कर आहार ढूँढ़ने की थी उस की प्राणीजन्य जीवों में। इस विचार के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों, वनस्पति और प्राणी, दो भिन्न २ जातियों में

रूपान्तरित हुए। आगे चल कर पहले की प्रजा वनस्पति आदि वर्ग में हुई और दूसरे की प्रजा कीट, पक्षी, पशु आदि वर्ग में। मनुष्य उपरोक्त दूसरी कोटि का, उच्चतम स्थिति पर पहुँचा हुआ, प्राणी है। ये दोनों सर्वथा भिन्न कोटि के होते हुए भी एक दूसरे पर अवलम्बित हैं।

स्थूलदृष्टि से देखने पर वनस्पति मुख्यतया, सूर्यप्रकाश और उष्णता के द्वारा कार्बन और ऑक्सिजन् के मिश्रण से बने कार्बन द्विअम्लजिद् (carbon dioxide) और उस के साथ की बाष्प से अपना पोषण करती है। परन्तु एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि वनस्पति सारा कार्बन द्विअम्लजिद् नहीं पचाती परन्तु उस में से केवल कार्बन ही उस के लिये आवश्यक होता है। और अनावश्यक अम्लजन (oxygen) वह पुनः वायु में छोड़ देती है। यह ऑक्सिजन् वायु में वैसा ही नहीं रहता, प्राणिओं द्वारा उस का प्राण-वायु की तरह उपयोग होता है। यह अम्लजन जीवन का अत्यवश्यक आधार है। यह श्वासोच्छ्वास क्रिया में श्वास के साथ फुप्फुस में लिया जाता है। और बाहर निकलते समय शरीर के कार्बन के मिलाप से कार्बनद्विअम्लजिद् में परिवर्त्तित होकर छोड़ा जाता है। यह वनस्पति का भोजन है। वनस्पतियाँ निरेन्द्रिय मूलतत्त्व और उन के निरेन्द्रिय मिश्रण का ही उपयोग करती हैं। परन्तु प्राणियों को वनस्पतियों से तैयार किये हुए सेन्द्रिय पदार्थों की ही आवश्यकता है। इन के बिना शरीर नहीं रह सकता।

प्राणिमात्र का विकास.—हम जो पदार्थ या अन्न खाते हैं, वे उसी रूप में हमारे शरीर के पोषक नहीं बन जाते। उन का पचन के अनन्तर रस में रूपान्तर हो कर शरीर के भिन्न २ भागों में वितरण होता है। उस रस का उपयोग केवल शरीर पोषण के लिये ही नहीं होता,

अपितु हमारे शरीर की सतत होने वाली क्षय की पूर्ति के लिये भी होता है। शरीर का प्रत्येक भाग (tissue) प्रत्येक सात वर्ष के बाद बदल जाता है, इस के लिये ठोस प्रमाण है। यह स्थिति अक्षरशः सत्य हो या न हो, परन्तु प्रतिदिन अपने शरीर में कुछ न कुछ सुधार और नवीनता उत्पन्न होती रहती है। यह शरीर–पोषण के सम्बन्ध में हुआ। केवल अन्न प्राप्त कर के शरीर नहीं चल सकता। अन्न पचने के लिये उष्णता की भी आवश्यकता है। हमारे शरीर में एक विशेष परिमाण में उष्णता रहना आवश्यक है। इस के लिये कार्बन मिश्रत द्रव्य, श्वासोच्छ्वास के साथ आने वाले प्राणवायु से जलना आवश्यक है। इस क्रिया से ही हमारे शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है। यह जला हुआ कार्बन ही कार्बनद्विअम्लजिद है, जो वनस्पति का अन्न है।

जीव बहुत से सजीव कोषों (cells) के एकीकरण से उत्पन्न हुआ है। यही मूलभूत तत्त्व सब सजीव वस्तुओं के आधार हैं। आरम्भ में एक ही कोष होता है। तदनन्तर वह स्वयंस्फूर्ति से विभाजित हो कर दो कोष बन जाते हैं। इस प्रकार सतत दो २ भाग हो कर गर्भ या अंकुर स्थिति प्राप्त होने तक विकास होता रहता है। तदनन्तर पूर्णत्त्व प्राप्त कर पोषित अंकुर मनुष्य, पशु, हाथी, मकड़ी, कीट, वृक्ष आदि वैयक्तिक संज्ञा प्राप्त करता है। उपरोक्त बढ़ने वाले कोष का भिन्न २ कोषों में रूपान्तर, कोष में वास करने वाली एक विशेष अज्ञात रसायन–शक्ति द्वारा होता है। और उसी के अनुसार सब संज्ञाएँ निर्धारित की जाती हैं। परन्तु परमाणु या कण कोई भी, “ हम कहाँ और क्यों जाएं ? ” इस प्रश्न के सम्बन्ध में क्या कभी विचार करते हैं ? इतना स्पष्ट

है कि इस के मूल में कोई विलक्षण शक्ति है। रसायन बद्ध रीति से संचार करने वाला मनुष्य रसायन विश्व का एक साधक है। वह उस विश्व का एक छोटा सा रासायनिक बिन्दु है। इतना ही नहीं, अपितु यह मनुष्य रसायन शास्त्र का चलता बोलता द्योतक है।

अॅलसेस कॅरेल कहता है, कि कोई भी इन्द्रिय (जीवित प्राणिओं की), मनुष्य की कल्पना के बाहर, बहुत उत्कृष्ट कुशलता के साथ अपना कार्य करती रहती है। ईंटें एकत्रित कर के जैसे दीवार खड़ी की जाती है, वैसे ही यदि इन्द्रियों का निर्माण कोषों से ही होता है तो भी उन में एक ईंट (साधक) ऐसी है, जिस से मंत्रित ईंट के समान स्फूर्ति उत्पन्न हो कर सब इन्द्रियों का विकास होता है। परन्तु ऐसा गृह निर्माण में नहीं होता। अतः कोष इन्द्रिय का मूल या उद्गम स्थान है, ऐसा कहना सर्वथा असत्य नहीं होगा। यह ईंटें (कोष) शिल्पकार, राज, बढ़ई पर अवलम्बित न रह कर स्वयं ही अपने घर के लिये (इन्द्रिय सिद्धि के लिये) आवश्यक सर्व द्रव्य मन चाहे रूपान्तर कर लेती हैं।

उत्पादक मूलतत्त्व.—अन्वेषकों को ज्ञात हुआ है कि शरीर लगभग ३० मूलतत्त्वों का बना हुआ है। ये शरीर बनने के लिये आवश्यक मूलतत्त्व लघुभार के और उच्चश्रेणी (कुल मूलतत्त्व ९२ हैं) के हैं। मूलतत्त्वों के विवरणपत्र (Periodic Table) में पूर्व के तत्त्व हलके भार के हैं। इन सब में ५३ वाँ आयोडीन मूलतत्त्व सब से भारी है। इन ५३ मूलतत्त्वों में बहुत से यदि जड़ देह की साधना में अत्यावश्यक हैं, तो भी बहुत से ऐसे हैं जिन का शरीर रचना में कहाँ और किस परिमाण में उपयोग होता है, इस का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं। परन्तु साधना में ये मूलतत्त्व आवश्यक हैं। तद्वत ५३ तत्त्वों में से सब की उत्पादक वर्ग में गणना

नहीं की जाती, तो भी उन में से कुछ कार्य परिवर्तक सूची में न दीखने वाले मूलतत्त्व, अतिसूक्ष्म परिमाण में ही क्यों न हो, पर वे वस्तुतः वहाँ उपस्थित हैं, यह आश्चर्य की बात है।

इतना ही नहीं अपितु उन में से कुछ घटकावयव दूध जैसे अनेकांगी पदार्थों में मिलते हैं। बोरॉन (५), लिथिअम् (३), रुदेनीअम् (४४), स्ट्रॉशिअम् (३८), टिटॅनिअम् (२२), ज़िंक (१०), ॲल्युमीनिअम् (१३), क्रोमिअम् (२४), सिलिकॉन (१४), टिन (५), व्हेनेडीअम् (२३), मॅंगनीज़ (२६), तथा बेरिअम् (५६), व लेड (३२) भी मिलते हैं। यदि ये मूलतत्त्व आधुनिक सुविधाओं, उपकरणों, यन्त्र, और कुशलता से पृथक्करण करने पर मिलते हैं, तो भी इन के कार्य का अनुमान नहीं हो सका। वैसे ही शरीर रचना के १०५३ मूलतत्त्वों में से कौन कौन से भाग लेते हैं या भाग लेकर अपना कार्य पूरा करने के बाद बाहर निकल जाते हैं, यह भी निश्चित नहीं। केवल इतना ही निश्चित है कि जड़ और स्वयंस्फूर्त मूलतत्त्व देह में दिखाई नहीं देते। भिन्न २ गॅसों के सम्बन्ध में भी यही बात है। श्वास के साथ अनेक प्रकार से वे शरीर में एकरूप होती हैं और उच्छ्वास के साथ बाहर निकलती हैं। इन में से बहुतेरी निरुपयोगी होंगी ऐसा समझा जाता था। परन्तु अन्वेषणों से यह सिद्ध हुआ है कि हवा में निरुपयोगी मालूम होने वाले अचेतन (inert) वायु सब से अधिक महत्त्व के हैं। इतना ही नहीं, किन्तु इन के अभाव से आरोग्य को बहुत धक्का पहुँचता है। अचेतन वायु से ही वास्तविक आरोग्य रहता है।

नाशकारी मूलतत्त्व.—इस वर्ग में 'मरूँगा परन्तु मारूँगा,' ऐसी जाति के अस्थिर मूलतत्त्वों का समावेश होता है। उपरोक्त

कहावत पूर्णरूप से ठीक जँचती है—ऐसे महाशय मूलतत्त्व अपना अस्तित्व मिटा कर रोगों के कारण को, अर्थात् हलके मूलतत्त्वों को, उत्पन्न करते हैं, जो स्वयंस्फूर्त मूलतत्त्वों से बहुत ही अधिक हलकी श्रेणी के कार्यवहक हैं।

रोगनाशक मूलतत्त्व.—इस वर्ग में रसायनशास्त्र की दृष्टि से निरुपयोगी और अचेतन, उदाहरणार्थ ऑस्मिअम्, रेडिअम्, प्लॅटिनम्, चांदी, सोना, पारद, सीसा और बिस्मथ जैसे मूलतत्त्वों का समावेश है। ये सब स्थिर मूलतत्त्व, विशेष कर के पारद, अपनी केवल स्थिर वृत्ति के कारण, अयोग्य संभोग से उत्पन्न, भयंकर रोगों पर पुरातन काल से रामबाण औषध के उपयोग में लाये जाते हैं।

अन्न.—अन्न क्या है, यह सब जानते हैं। जो सेवन करने से अपने शरीर में रक्त द्वारा शरीर का पोषण करता है, और बाह्य शक्तिओं का सामना करने के लिये हमारे शरीर में उष्णता रूपी बल प्रदान करता है, उसे वैज्ञानिक दृष्टि से अन्न कहते हैं। इस के अनुसार हवा और पानी भी मिल जुल कर हमारे शरीर की उत्पत्ति, वृद्धि और सशक्त करने में सहायता करते हैं, अतः ये भी अन्न हैं। परन्तु वैयक्तिक दृष्टि से विचार करने से इन में से एक भी उपयोगी नहीं। अपने शरीर की यन्त्र से तुलना करने पर उस की गति के लिये बाह्य शक्ति की आवश्यकता होती है। और जैसे ईंधन की उष्णता से पानी की बाष्प बन कर, उस से यन्त्र चलता है, और उस ईंधन पर ही उस को मुख्यतः अवलम्बित रहना पड़ता है, वैसे प्राणी और वनस्पतिओं के बारे में नहीं है। उन की जीवन क्रिया स्वयं–प्रेरित और स्वयं–सिद्ध है। वे जीवन के सम्बन्ध में दूसरे किसी पर निर्भर नहीं रहते। स्वयं अपना निर्माण, वृद्धि और सुधार करने का कार्य पूरा करते

हैं। उन में से विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि वनस्पति के लिये आवश्यक अन्न, प्राणी के अन्न की अपेक्षा बहुत सादा होता है। वनस्पति में कार्बनद्विअम्लजिद और पानी से तैयार होने वाले शक्कर, श्वेतसार (starch) और नृसार जैसे मिश्र मूल तत्त्वों से मिलने वाले रस या सत्व का परस्पर एकीकरण कर के अन्न निर्माण करने की शक्ति है। स्थूल दृष्टि से कोई भी प्राणी अपना शरीर स्वयं वनस्पति के समान नहीं बनाता, और आवश्यक पोषक द्रव्य वह शाक भाजी से लेता है। उसे निर्माण करने की प्राणी में शक्ति नहीं। हम नैसर्गिक रूप में वायु, पानी (बाष्प), सूर्यप्रकाश, ताज़े फल, शाकादि के द्वारा मिलने वाले अन्न का सेवन, स्वास्थ्य हितकर और अहितकर का विचार न कर के करते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं। अन्न का सेवन शरीर की आवश्यकता से अधिक भी न होना चाहिये। उदाहरणार्थ मॅन्गनीज़ धातु प्रतिशत कितने अंश भोजन में होनी चाहिये, यह कहना लगभग असम्भव है, तो भी धातु की भोजन में आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। मॅन्गनीज़ जैसे और भी बहुत से द्रव्य हैं, परन्तु आरोग्य प्राप्त करने के लिये या शरीर स्वस्थ रखने के लिये ये सब द्रव्य एकदम या पृथक् २ समय पर खाये जाते हों, ऐसा भी नहीं। किन्तु शरीर स्वास्थ्य के लिये जितने आवश्यक होते हैं, उतनों का ही प्रयोग किया जाता है। हंसक्षीर न्याय पर निर्भर प्राणियों और वनस्पतियों के जीवनक्रम में बहुत साम्य है।

हमारी शरीर क्रिया तराज़ू के तोल के समान है। वह अधिक आहार से कब गोता खायेगी, नहीं कहा जा सकता। परन्तु देह में सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह सब खाई हुई वस्तुओं को ग्रहण कर लेता है, और गिरते हुए या गिरे हुए स्वास्थ्य को

समावस्था में रखता है । बाह्य शक्तियों का प्रभाव न पड़े तो सचमुच सब क्रियायें बिना प्रतिबन्ध चलती रहती हैं । परन्तु जिस समय कोई अपरिहार्य कारण से, किसी प्रकार की विशिष्ट स्थिति में रहने से, और कृत्रिम अन्न सेवन कर के आयु बिताने से, अन्न शरीर पोषक नहीं होता, तो शरीर स्वास्थ्य नष्ट और जीवन कष्टमय हो जाता है । अन्त में प्राणी रोगों का घर बन जाता है ।

देह एक नाज़ुक तुला.—सूक्ष्म और अन्वेषक दृष्टि से मानव देह रासायनिक मिश्रणों से बना हुआ है । जो कि अनेकांगी और गुत्थमगुत्था हैं, । शरीर को नाश से बचाने के लिये और कम हुए द्रव्यों को पूरा करने के लिये कुछ मूलतत्त्व विशिष्ट परिमाण में अन्न द्वारा खाये जाते हैं । यह कार्य इतनी नाज़ुक रीति से होता है कि देह को एक अत्यन्त नाज़ुक तराज़ू कहा जाता है और कहा जाता रहेगा । यदि इस तुला में समतोलता न हो तो समझना चाहिये की वहाँ कुछ धोका (रोग) है । रोग अन्न के अभाव से या अधिक सेवन से उत्पन्न होते हैं । देह और शरीर प्रकृति एक विशेष स्थिति के अनुसार उत्पन्न हुई है और वह अनादि काल से आज तक एक विशेष स्थिति पर अवलम्बित होने से यन्त्र के समान उचित रीति से चलती रहती है ।

जगत की उत्पत्ति के अनन्तर जिस समय वायु में और पृथ्वी पर बारबार परिवर्त्तन होने बन्द हुए और साधारणतया सर्वत्र स्थायिकता उत्पन्न हुई तब भूपृष्ठ पर जीव उदित हुए । पहले निर्माण हुए प्राणीयों को (कीट, जन्तु आदि को), वायु में उपस्थित हल्के मूलतत्त्वों पर निर्वाह करना पड़ा । परन्तु आगे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ, और जैसे २ मानव देह की निसर्ग के अनुसार वृद्धि होने लगी, वैसे २ ही, समयानुसार पृथ्वी के पृष्ठ भाग से वा

ऊपरी वातावरण से मिलने वाले भिन्न २ नये मूलतत्त्वों के सेवन करने का क्रम चालु रहा। वनस्पतियों की मूलें केवल द्रवित होने वाले द्रव्यों का ही शोषण करती हैं। अतः मानव शरीर के लिए भारी और स्वयंस्फूर्त तत्त्व लेना असम्भव था और इस लिये वे शरीर रचना की दृष्टि से निरुपयोगी सिद्ध हुए। ये तत्त्व शरीर के तन्तुओं के लिये अत्यन्त विघातक हैं, इसी कारण से शरीर के रासायनिक मिश्रणों में कहीं भी इन का समावेश नहीं देखा गया।

अब तक के स्पष्टीकरण से यह प्रतीत होता है कि लघु मूलतत्व ही मुख्य कार्य प्रवर्तक हैं। उन के अभाव से शरीर का ह्रास प्रारम्भ होता है। और यह ह्रास बन्द कर आवश्यक मूलतत्वों को पहुँचाने से प्रकृति पूर्वानुसार सम और सुदृढ़ बनाई जा सकती है। परन्तु तत्वों के परिमाण की अधिकता या कमी से स्वास्थ्य की नींव हिल जाती है और प्रकृति रोगी हो जाती है। मनोविकारों या दूसरे किसी भी कारण का प्रकृति पर अत्यन्त तुरत परिणाम होता है। उदाहरणार्थ, फुप्फुसक्रिया और हृदय की बलिष्ठता योग्य परिमाण में होने वाले श्वासोच्छ्वास पर ही निर्भर रहती है। ऐसी क्रमबद्ध क्रिया पर मनोविकारों का परिणाम बहुत ही तुरत होता है और हृदय अबल हो जाता है। इसी प्रकार किसी समय (जिस में वायु संचालन भली प्रकार न हो, stuffy) और अन्धेरे कमरे में रहना पड़े, तो हम नहीं रह सकते। फुप्फुस की क्रमबद्ध क्रिया पर बुरा परिणाम होता है। किसी भी रीति से देखो, अस्वाभाविक या कम परिमाण में अम्लजन अन्दर लिया जाये तो उस का एक ही परिणाम होता है, अर्थात् शरीर में रोग का होना। संक्षेप में, मनोविकार बहुत

भयंकर हैं, उन का हमारी प्रकृति पर बहुत जल्दी परिणाम होता है। आज कल की सामाजिक परिस्थिति में शरीर की गाड़ी को सुचारु रूप से चलने में रुकावट डालने वाले कारण प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। उदाहरणार्थ शोर, धक्कामुक्की, रेलगाड़ी ठीक समय पर पकड़ने की दौड़ धूप, मोटर से बचने के लिये दुबकना आदि, इन से नियमबद्ध, श्वासोच्छ्वास नहीं होता और हमारे शरीर पर तीव्र परिणाम होते हैं। तथा किसी भी प्रकार की चिन्ता से भी आज के दौड़ धूप के काल में शान्ति न मिलने से प्रकृति बिगड़ जाती है।

क्षयरोग या अयोग्य संभोग से होने वाले रोगों का कारण भी क्षति है। निम्नलिखित किसी भी एक कारण से प्रकृति स्वास्थ्य में बिगाड़ हुए बिना न रहेगा यह निर्विवाद है। वे कारण:—

(१) कुछ विशेष तत्त्वों का अभाव।

(२) कुछ तत्त्वों का अधिक पचन।

(३) निरोगी तन्तुओं (tissues) का इतर कारणों से होने वाला नाश।

भावी सन्तति का आरोग्य.—चालु जीवन निसर्ग के सर्वथा विरुद्ध है, इतना ही नहीं, अपितु वह बुद्धि, मन और शरीर के परस्पर नाज़ुक सम्बन्ध में उलटपलट या बिगाड़ करने वाला है। बहुत लोगों को बुद्धि, मन, मांस की होने वाली वृद्धि को रुकावट डालने वाली परिस्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ऐसे लोगों की सन्तति भी अपने आरोग्य के लिये अत्यावश्यक तत्त्वों को प्राप्त करने की शक्ति से दूर रहती है। हम स्वयं अपनी भावी सन्तति को निर्बल कर रहे हैं, जो अन्याय है।

भिन्न २ तत्त्वों के कार्य.—अति सूक्ष्म परिमाण में पृथक्करण करने से हायड्रोजन, कार्बन, नायट्रोजन, ऑक्सिजन, फ्लुओरिन्, क्लोरिन्, आयोडीन, फ़ॉस्फ़रस, संखिया, गन्धक, सिलिकॉन्, सोडिअम्, पोटॅशियम्, कॉपर, मॅग्नेशिअम्, कॅल्शिअम्, यसद (जस्त), मॅन्गानीज़, लौह, कोबॉल्ट और निकल आदि द्रव्य हमारे शरीर में मिलते हैं। अन्वेषणों से द्रव्यों का कार्य भी निश्चित हो गया है। उदाहरणार्थ कॅल्शिअम् द्रव्य अस्थि, रक्त, माँस के लिये अत्यावश्यक है। स्थूल दृष्टि से देखने वाले को शरीर ईंटों से निर्मित गृह सा प्रतीत होने की सम्भावना है। परन्तु वैसा नहीं यह पहले ही कह चुके हैं। कारण कि ऐसी बहुत वस्तुएँ हैं जिन का अभी तक सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ। यथा हमारे शरीर में निश्चित रूप से मिलने वाला मॅग्नेशिअम् धातु ही लीजिये; यह द्रव्य फुफ्फुस, ग्रन्थियों, मस्तिष्क, स्नायु और हृदय जैसी स्नायुसिद्ध इंद्रिय आदि सब में विद्यमान है, इतना ही नहीं, अपितु वह सारे शरीर में मिला हुआ है। इस की आहार द्रव्यों में कमी या पूर्ण अभाव होने से मूर्च्छा (फिट्स) जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। तो भी ऐसा क्यों होता है, इस का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हुआ। टिन (जस्त), जिव्हा और मस्तिष्क में पाया जाता है। इस से उस का रुचि से कुछ सम्बन्ध होना चाहिये यह स्पष्ट है, तो भी यह कैसे है, यह बताना हमारी शक्ति के बाहिर है। तद्वत स्थिति लौह के निकट सहोदर मेन्गानीज़ धातु की भी है। मॅन्गनीज़ के कम होने से मनुष्य या पशु चुपसाधी और शीघ्रकोपि हो जाता है। इस से बढ़ने वाली अशक्तता मनुष्य को नपुंसक बना देती है, तथा स्त्री में मातृ प्रेम का अभाव उत्पन्न करती है, तथा माता अपनी सन्तान की ओर झाँक कर भी नहीं देखती। समयानुसार वह

अपने बच्चे का अन्त भी कर देती है। लौह के समान ही आयोडीन का हाल है। एक वैयक्तिक प्रामाणिकता और अपराधी वृत्ति का दिग्दर्शन करती है तो दूसरी (आयोडीन) सन्तति का परिमाण निश्चित करती है। इस के अभाव से प्राणी बाँझ वा नपुंसक हो जाता है। या यह द्रव्य अधिक होने से बहु सन्तति, जुगल सन्तति आदि होते हैं। बहु सन्तति वा दो, तीन एक साथ उत्पन्न होने की सम्भावना असम्भावना आयोडीन के परिमाण पर ही निर्भर है।

मानसशास्त्र की दृष्टि से भी अनेक द्रव्यों की समतोलता होना बहुत आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मॅनचेस्टर का डोहर्टी ऐसा कहता है कि, भिन्न २ रासायनिक तत्त्व मनुष्य के शरीर में भिन्न २ स्वभाववैचित्र्य निर्माण करते हैं। उन के तोल के समान ही वृत्ति बनती है। इन में से कोई भी द्रव्य अधिक परिमाण में होने से उपरोक्त अनुसार भिन्न २ लक्षण वा स्वभाव पैदा होते हैं। उदाहरणार्थः—

ऑक्सिजन.—जीवन के लिये अत्यावश्यक ढारस देता है। आशावादी और बकवादी स्वभाव इस का द्योतक है।

हायड्रोजन.—इस से तड़प, शान्त, और सौम्य गुणवाली विचार शक्ति बनती है। इस से स्वयं शान्त बैठ कर दूसरों से कार्य कराने की वृत्ति, मस्तिष्क और मज्जातन्तु की चपलता आदि गुण प्राप्त होते हैं।

कार्बन.—इस से आलस्य वा भोजन के बाद नींद आती है।

कॅल्शिअम्.—इस धातु की समृद्धता वाला मनुष्य झूट बोलना पाप समझता है। चौड़ी और भव्य शरीर आकृति,

गण्डास्थियों की ऊँचाई इस धातु के कारण होती है। और ऐसे मनुष्य जगत में क्रान्तिकारक कहलाये जाते हैं।

गन्धक.—यह तेज और चन्द्र जैसा स्थैर्य उत्पन्न करता है। ऐसे लोगों की मनोभावनायें बहुत उत्कट और गहरी होती हैं।

लौह.—इस से शरीर में आकर्षण और अवर्णनीय सौंदर्य उत्पन्न होता है।

पोटॅशिअम्.—यह जिन में अधिक परिमाण में हो वे सदा चंचल होते हैं। उन को रातदिन नाचरंग भाता है। "इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति हम में है," ऐसी वे आत्मश्लाघा करते हैं, और बहुत घमंडी होते हैं। उपरोक्त वर्णित बातें सच होने पर भी, वे किस रीति से घटती हैं, यह अभी तक गूढ़ है।

उपरोक्त अव्यक्त और गूढ़ रीति से चलने वाली शक्ति कैसे उपयोग में लायी जाती है, यह समझने के लिये आज का ज्ञान अपूर्ण है, तो भी भिन्न २ तत्त्वों के बाह्य कार्यों की रूपरेखा बनाने के लिये वह कम नहीं है। परन्तु इतने से ही यह विषय समाप्त नहीं हो जाता, और भी दूसरे बहुत से तत्त्व ऐसे हैं, जो कि स्वयं बहुअंशतः पृथक् रहते हुए भी दूसरे तत्त्वों के द्वारा सुविधा युक्त रासायनिक क्रिया कराते हैं, और ऊपर की संयुक्त रचना में सहायता देते हैं। ऐसे तत्त्व हीलियम वायु के समान शरीर में आते हैं और उसी रूप में बाहिर चले जाते हैं। स्थूल दृष्टि से इन का कोई उपयोग नहीं दीखता। और इसी लिये आज बहुत दिनों तक इस ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया।

उपचार.—ऊपर दर्शाया गया है, कि शरीर का ह्रास या रुग्णता शरीर में अत्यावश्यक तत्त्वों के अभाव से अथवा अधिक पोषण से होती है, दूसरा कोई भी कारण नहीं। रोग का कारण स्पष्ट होने पर

उसे नष्ट करना बहुत सहल होता है। उपरोक्त अनुसार रोग नष्ट करने अर्थात् जिस तत्त्व के पहुंचाने से रोगावस्था में कुछ परिवर्तन हो कर शरीर पूर्ववत् स्वस्थ होता है, उसे हम उपचार कहते हैं।

सेन्द्रिय औषध.—प्राणी और वनस्पति, पोषण के लिये आवश्यक द्रव्य, वायु, पानी और खनिज, नैसर्गिक पदार्थों से लेते हैं। परन्तु इन दोनों की शोषण कृति का अन्तर हम पूर्व देख चुके हैं। प्राणिओं को आवश्यक द्रव्य वनस्पतियों से लेने पड़ते हैं। उन में वे जैसी की तैसी उपयोग में लाने की शक्ति नहीं। और इसी लिये वनस्पति, की रस, क्वाथ और घन क्वाथ आदि बनाई जाती हैं और उन का उपयोग होता है। इन में से बहुत से द्रव्य सूक्ष्म परिमाण में भी अधिक सामर्थ्यवान हो सकते हैं, यथा पीछे बताये गये, मॅन्गनीज़ और मॅग्नेशिअम् से सिद्ध होता है। आयुर्वेद में कथित विशेष भूमि में विशेष वृक्षादि की खाद डाल कर भिन्न २ औषधियाँ उत्पन्न करना सर्वश्रुत है। यही बात पशुओं से तैयार औषधों के बारे में भी है। वनस्पति के समान सीमित अन्न पर (दाना, हरित तृणादि या जल) पोषित प्राणी औषध तैयार करने के लिये मारे जाते हैं। यथा रंगबिरंगे धागे प्राप्त करने के लिये उसी प्रकार की मक्षिकाएँ मकड़ी को खिला देते हैं।

निरिन्द्रिय औषध.—निरिन्द्रिय क्षारों को उत्तम प्रकार से खरल किए विना वे समभाग में बाँटी नहीं जा सकतीं तथा उन का समीकरण नहीं होता, और वे रोग निवारक नहीं बनतीं। भली प्रकार एकीकरण करने के अनन्तर ही उन की (अव्यक्त) गुप्त-शक्ति के परिणाम से उन का शोषण होता है। अत: जो २ द्रव्य उपचारक समझे जाते हैं, वे निम्नलिखित गुण-युक्त होने चाहियें।

(१) साधारण आकार के और हलके तत्त्वों से निर्मित।

(२) चंचल प्रकृति और तदनुसार स्फूर्तिवृत्ति के।

(३) वैचित्र्यपूर्ण बनावट के और इस लिये अत्यन्त अल्प परिमाण में फिसलने वाले तत्त्व।

स्वयंभू या परिमाणु स्थिति तक पहुँचे हुए अतिशय गुणवान द्रव्यों में प्रवाल (सहस्रपुटी) भस्म जैसा दूसरा कोई भी गुणकारी औषध नहीं। प्रवाल में स्थिर कॅल्शीअम् के गुण खरल करने से अधिक २ बढ़ते हैं, ऐसा अब सिद्ध हुआ है। चूना, मोती और सीप से निर्मित भस्मों में जाती वैशिष्ट्य से कमाधिक परिमाण में सूक्ष्म भूत कॅल्शिअम् अणु तैयार होते हैं। और उस के परिमाण पर ही इन भस्मों के गुण कमाधिक दिखाई देते हैं। इस प्रकार से तैयार किये हुए भस्म बहुत कष्टसाध्य हैं और इसी लिये वे बहुत महँगे होते हैं। लौह का गुणकारी प्रभाव भी उपरोक्त अनुसार ही है। उदाहरण के लिए प्रसूतावस्था में पीने के लिये जो जल तैयार किया जाता है, वह केवल तपा हुआ ही नहीं होता, किन्तु उस में तपा कर रक्त हुए लौह को बुझाते हैं, इस से वह गुणकारी होता है। तपा हुआ रक्त लौह सूक्ष्म परिमाण में पानी में एकरूप हो जाता है, और यही लौह रक्तवृद्धि के लिये बहुत प्रभावशाली होता है। वैसे ही भिन्न २ धातु (चाँदी, ताँबा, काँस्य) के बर्तनों में पीने का पानी रखना भी निश्चित उपयोगी होता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखे गये आज तक की जानकारी से, अणुओं की प्रगति से कार्यसमता होने के लिये एकीकरण या पृथक्करण अत्यन्त आवश्यक हैं। निरिन्द्रिय औषधों या रसायनों (शलाका, भस्म) पर विचार करने से दृष्टिगोचर होता है, कि, उपरोक्त पृथक्करण की

अत्यन्त आवश्यकता है, चाहे वह औषध खाने की हो या शीघ्र उपचार के लिये सूचीवेध (injection) करने की हो। यह क्लोरिन्, आयोडीन्, कॅल्शिअम्, कार्बन, गंधक, नायट्रोजन फॉस्फ़रस्, आर्सेनिक, ॲन्टिमनी, बिस्मथ, सोडिअम्, पोटॅशिअम्, ताँबा, चान्दी, सोना, पारद, और लौह आदि मूलतत्त्वों से साध्य है। उपरोक्त तत्त्वों की औषधों के परिमाण में किंचित् असावधानता हो तो वे उलटा शरीर स्वास्थ्य को बिगाड़ देती हैं। इतना ही नहीं, वे नाश तक भी कर देती हैं। संक्षेपतः इलेक्ट्रॉन के आधुनिक अन्वेषणों से निश्चित हुआ है, कि प्रत्येक मूलतत्त्व विशेष घनात्मक और ऋणात्मक विद्युत् परमाणुओं (electrons & protons) के एकीकरण से बना हुआ है। (विद्युत् तरंग के अत्यन्त सूक्ष्म पृथक् किये हुए परमाणु को हम माया या प्रकृति कहते हैं)। कोई भी द्रव्य पृथक्करण के अनन्तर उपचार दृष्टि से अधिक उपयुक्त होता है। और वैसे ही पृथक्करण जितने अधिक परिमाण में हो सके, कर के, तत्त्वों की शक्ति कार्य में लाई जाती है।

आज तक सर्वसाधारण और हलके भार के तत्त्वों का पृथक्करण करने में वैज्ञानिक निपुण हुए हैं, तो भी यह पृथक्करण विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ। इस में बहुत पैसा और श्रम व्यय होता है। अतिशय ज़ोरदार दाब, अति उष्णता और कॅटलिस्ट (सहायक तत्त्व) या ॲन्टि-कॅटलिस्ट की सहायता से आज मानवप्राणी निसर्ग की नक़ल उतारने की इच्छा करता है। और बहुत श्रम करने के बाद इस की सम्भावना रखता है। परन्तु यह पहाड़ खोद कर चूहा निकालने के समान है। यही कार्य निसर्ग प्रशान्त और गम्भीर रीति से करता रहता है। उस में कभी भी भयंकर परिवर्त्तन या हलचल दिखाई नहीं देती। सर्वथा क्षुद्र या

ध्यान में न आने वाली थोड़ी सी वायु के दाब से, वैसे ही उष्णता के भेद से पृथ्वी पर नैसर्गिक बातें होती रहती हैं। क्या यह सचमुच विस्मयकारक नहीं ? यह ऐसा क्यों और कैसे होता है ? यह कैसे किया जा सकता है ? क्या एक कॅटॅलिस्ट को दूसरा और उसे तीसरा, उत्तेजित करता है ? उपरोक्त वस्तुस्थिति का जितना हम विचार करते हैं, उतना ही हम अधिक उलझ जाते हैं, और निर्बुद्धि हो जाते हैं।

इस का एक ही उपाय है, कि तत्त्वों का विशेष पृथक्करण कर के पुनः विशेष रीति से निर्माण करना। इस मार्ग का अवलम्बन कर के और विद्युत् की सहायता से नायट्रोजन का पृथक्करण कर के भिन्न २ द्रव्य आज निर्माण किये जाते हैं। और मूलतत्त्वों से भिन्न २ द्रव्य आज निर्माण किये जा रहे हैं। बेरिलिअम् और घन हायड्रोजन की सहायता से भिन्न २ ज़ोरदार द्रव्य तैयार किये जाते हैं। उन को अधिक प्रभावित करने के लिये उष्णता–शक्ति और सहायक तत्त्वों की योजना आवश्यक है। यहाँ मुख्य प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि निसर्ग से ये सब कार्य किस प्रकार सहज पूरे होंगे। इस सम्बन्ध में हमें होमिओपॅथी से बहुत सहायता मिलने की सम्भावना है, पर उसे आज छोटापन समझा जाता है। कारण कि होमिओपॅथी पर आधुनिक डॉक्टरों और वैद्यों का अधिक विश्वास नहीं। इस शास्त्र को छोटी श्रेणी का समझना एक सभ्यता का लक्षण माना जाता है। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी संकुचित वृत्ति को स्थान न देना ही अच्छा है। वैज्ञानिक का मुख्य ध्यान साध्य की ओर होता है साधन की ओर नहीं, उस के लिये कोई भी साधन उपयुक्त है। कार्य सिद्धि के लिये कितनी भी नीची श्रेणी का साधन उपयोग में लाने में वह नहीं झेंपेगा।

भावी अन्वेषणों की दशा.—आज तक प्रायः सभी से उपहासित होमिओपॅथी ने प्रत्येक समय किसी भी प्रकार की अधिक शक्ति उपयोग में न ला कर अपना कार्य व्यवस्थित और परिणामकारक करके दिखाया है। अधिक क्या? साधारण लवण का उदाहरण लीजिये। सदा खाने में उपयोगी साधारण लवण में कहने मात्र को महत्त्व की कोई शक्ति नहीं, परन्तु अव्यक्त रूप में उस में अधिक सामर्थ्य है। उस से बहुत प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। पानी डाल कर लवण, सोडिअम् क्लोराइड् (diluted to the strength) बहुत ही परिणामकारक होता है। हल करने की क्रिया शुरू होने पर (while dilution is going on) प्रत्येक सोडिअम् परमाणु पर बाहर के पानी से पतला करने की क्रिया से होने वाले परिणामों से उस की स्थिति को गति मिलती है। उस की गुप्त शक्ति प्रादुर्भूत होती है और उस से इस का पूर्व स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और वह स्वयंस्फूर्त हो कर अति शक्तिमान बनता है। यह शक्ति उस में कुछ घंटों तक टिक सकती है। नैसर्गिक रीति से अचेतन परन्तु जल में हल होने से सचेतन होने वाले तत्त्वों की स्थिति इसी प्रकार है।

रेडिअम् धातु अबाधितपन से स्वयंस्फूर्त होता है। इस लिये उस से पृथक् हुए इलेक्ट्रॉन्स शरीर के कोष को नित्यापेक्षा अधिक गति देते हैं। शरीर में या अन्यत्र स्थूलदृष्टि से उपयुक्त, पर अन्य परिणाम में विघातक ऐसी अन्य बहुत सी धातुओं में भी रेडिअम् जैसी स्वयंस्फूर्तता उत्पन्न करने से शरीर के दूषित या स्थगित तत्त्वों को अनुकूल गति मिलती है और शरीर के दोष नष्ट होते हैं। जितना कोई सूक्ष्म है, उस का प्रभाव अधिक होता है। इसी सृष्टि तत्त्व पर होमिओपॅथी की औषधों की सिद्धि की गई है। आज तक कृत्रिम स्वयंस्फुर्ति निर्माण करना बहुत महँगा सिद्ध हुआ है। परन्तु यही

कार्य भारत में अनादिकाल से आज तक सहस्र या दशसहस्र बार खरल करने से, पेड़ों को भिन्न २ खाद डालने से और पशुओं को भिन्न २ अन्न खिलाने से सिद्ध किये जाते रहे हैं। यह बात आयुर्वेद की हुई। उस के अनुसार ही आधुनिक भिन्न २ ग्लैंडोपाथी क्रोमोपाथी, टिशू रेमेडीज़्, आदि हैं। इन सब भिन्न २ शास्त्रों का उद्गम किसी एक बड़े तत्त्व के अनुसार हुआ होगा। यह तत्त्व हाथ में आ जाने से मनुष्य का कोई भी रोग असाध्य नहीं रहेगा। यह कुछ अव्यवहार्य या सर्वथा असम्भव है ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। क्यों कि प्रयत्नों के बाद ईश्वर भी मिल जाता है।

एक काल ऐसा था, कि अणु गोल और ठोस प्रतीत होते थे, तदनन्तर वे सूर्यमण्डल के समान अमूर्त सिद्ध हुए। इतना ही नहीं, अपितु वे माया प्रकृति की विद्युत् शक्ति के इलेक्ट्रॉन वा प्रोटॉन के बने हुए सिद्ध हुए। और अन्त में इलेक्ट्रॉन या प्रोटॉन के भिन्न २ मण्डलों में गुणकारक धर्म होते हैं, ऐसा निश्चित हुआ। आज का निर्णय यह है, कि इस मण्डल के इलेक्ट्रॉन को न्यूनाधिक कर के एक अणु को दूसरी जाति के अणु में रूपान्तरित करने का सामर्थ्य होता है। ये सब कृतियाँ यदि पहले २ असम्भव प्रतीत होती थी, तो भी परिवर्त्तित काल के अनुसार वे आज स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। इस रीति से हम पग पग आगे बढ़ रहे हैं, अतः अमृतसिद्धि प्राप्त करना बहुत असम्भव प्रतीत नहीं होता!

रसायनशास्त्र से कुछ शिक्षा
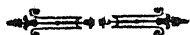
एच्. डब्ल्यु. हॅगार्ड कहता है, " इतिहास अन्वेषण को ही हम अन्वेषण समझते हैं । " आज बहुत से इतिहास संशोधकों के नाम और उन के अन्वेषण हमारे सामने हैं । ऐसे भी बहुत से अन्वेषक हैं, जिन के नाम बहुत लोगों को मालूम नहीं । उन के नाम तथा स्थापित स्मारक आदि का उल्लेख संसार के इतिहास में नहीं मिलता । कई ऐसे भी अन्वेषक हैं, जो संसार से पृथक् रह कर जगत के कल्याण के लिये सारी आयु व्यतीत करते हैं । स्थूल दृष्टि से न सही, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने जीवन-क्रम में बहुत उथल-पुथल की है ।

प्रास्ताविक.—दैव से या स्वभाव से आधुनिक काल रासायनिक क्रान्ति का है । आजकल के सभी व्यवसाय रसायन–शास्त्र के सुधारों द्वारा ही चल रहे हैं । वैज्ञानिकों ने अनेक चमत्कारपूर्ण, विस्मयकारक और मनोरंजक अन्वेषण किए हैं, जीवन–यात्रा को सुखकर बनाया है । कभी २ हम उन की कल्पनाओं और गम्भीर अन्वेषणों का उपहास भी करते हैं । परन्तु इस की वैज्ञानिकों को कोई चिन्ता नहीं, और वे सतत निसर्ग का रहस्य प्रकाशित करते रहते हैं, जिस से मनुष्य की क्रियाएँ, जिन का जीवन या मृत्यु के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, निसर्ग के पेट से बाहर आ गई हैं ।

यह सच होने पर भी इन अन्वेषणों से जीवन अधिक भयावह हो गया है । भिन्न २ अस्त्र, प्रतिअस्त्र से साधारण जनता को भय होना स्वाभाविक है । परन्तु प्रत्येक वस्तु के अच्छे और बुरे दो रूप होते

हैं। जिस प्रकार किसी अन्वेषण द्वारा डाक्टर या वैद्य रोगी को निरोग कर सकते हैं, उसी प्रकार उन के लिये मनुष्यों को मारना भी सहल है। यही तत्त्व रसायन–शास्त्र में कार्य कर रहा है।

यदि जगत के सुधार के लिये हम वैज्ञानिक क्रान्ति लाना चाहेंगे तो निश्चित ही रसायन–शास्त्र का दुरुपयोग नहीं होगा। एक समय वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का व्यवसाय में कोई उपयोग नहीं समझा जाता था, परन्तु उन्हीं वस्तुओं से अब अनेक व्यवसाय रूपी प्रचण्ड आगार निर्मित हुए हैं। इसी लिये लोग इस शास्त्र की ओर प्रतिदिन दौड़ रहे हैं। रसायन–शास्त्र को सब से अधिक मान प्राप्त है। यह सब व्यवसायों का खाद्यौज (vitamine) है। तो भी सब शास्त्रों के आदि तत्त्व के रूप में इसे बहुत कम लोग जानते हैं। इस शास्त्र द्वारा व्यावहारिक सुविधाओं पर और जीवन कैसे अधिक रम्य बनेगा, इस पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिस प्रकार सुगृहणी प्रतिदिन कुटुम्ब के कल्याण के लिये सतत प्रयत्न कर के उस की प्रतिष्ठा बढ़ाती है, परन्तु समाज में विहार करने का अवसर न मिलने के कारण, लोकदृष्टि से वह कम श्रेणी की समझी जाती है, उसी प्रकार की स्थिति रसायन–शास्त्र के ज्ञाताओं की है। वैज्ञानिक वर्षों तक क्षुधा–तृषा भूल कर, अपनी प्रयोग–शाला में बन्द रह कर कार्य करते हैं, और लोग उन्हें 'विक्षिप्त' कह कर पुकारते हैं, यही उन का भाग्य है।

साधारणतः लोग भिन्न २ विषयों का अभ्यास करते हैं, पर ऊपरी दृष्टि से। अतः उन का ज्ञान कम बढ़ता है। उन की स्थिति योगसाधन के पीछे पड़ कर विशेषता चाहने वाले मनुष्य की सी होती है, जो थोड़ी सी सिद्धि होने पर अहंकारी और उन्मादी हो जाता है, और आगे के प्रयत्न छोड़ देता है। लोगों को अपने स्वल्प ज्ञान

से चकमा देता है, और थोड़े दिन बाद नामशेष हो जाता है। यही स्थिति रसायन–शास्त्र का अपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले की है। बहुत विषयों को न देख कर यदि एक ही विषय में निष्ठापूर्वक तपस्साधना की जाये, तो उत्तम ज्ञान और पूर्णता प्राप्त होती है। रसायन–शास्त्र सब भौतिक–शास्त्रों का केन्द्र है।

पुरातन काल में सत्यान्वेषण ही भौतिक वैज्ञानिकों का मुख्य उद्देश्य था। परन्तु गतकालीन सुधारणाओं और उन की श्रेणी को वर्तमान काल की सुधारणाओं से तुलना करने पर पृथ्वी–आकाश का अन्तर दीखता है। काल के साथ सुधार और सुधार के साथ उन्नति का क्रम चलता रहता है। इस से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे औद्योगिक अन्वेषण और राष्ट्रहित की सन्धि हो। इन परस्पर अवलम्बी बातों से आज बहुत से लोग इस विषय के पूर्ण स्वरूप तक पहुँचने के लिये उत्कंठा से यत्न कर रहे हैं। और जीवन–संग्राम में विजयी होने के लिये रसायन–शास्त्रज्ञों की बड़ी सेना अपने पास रखते हैं। वैसी ही अन्य विषय में रुचि रखने वालों को भी सहायता देते वा पहुँचाते हैं। उपरोक्त स्थिति के अनुसार पहले जर्मनी, बाद अमेरिका और उस के पीछे जापान और रशिया आदि भिन्न २ देशों ने प्रगति की है। अपने यहाँ, किसी भी कारण से क्यों न हो, कर्तव्यनिष्ठा अत्यन्त निकृष्टावस्था को पहुँच गई है। स्वार्थ अधिक परिमाण में है और बढ़ रहा है। ऐसे समय राष्ट्रोद्धार करने के लिये योग्य कार्यकर्त्ता चाहियें। बनावटी आभास किसी काम का नहीं।

एक विद्वान का कहना है कि सत्य (निसर्ग रहस्य) एक बड़ी चंचल अप्सरा है। 'न हि सत्यात् परम धर्म' कह कर

सत्यधर्म के लिये पागल हो बैठो, तो भी नहीं कहा जा सकता कि वह सत्यरूपी अप्सरा आप के हाथ आ जायेगी।

और जैसे २ आप सत्य के पीछे पड़ेंगे, वैसे २ रामायण के सुवर्ण–मृग के समान वह आगे २ दूर दौड़ता हुआ प्रतीत होगा। परन्तु इस से निराश होने की वा उतावलेपन की आवश्यकता नहीं। मन का समतोलपन स्थिर रखने के लिये कर्मयोग का अनुसरण करना ही चाहिये। इस से सतत टिकाऊ और उच्च श्रेणी की कार्यक्षमता का ध्येय प्राप्त करना आसान हो जाता है। चंचल अप्सरा वा सत्यान्वेषण के लिये कर्मयोग का आश्रय लेना ही उत्तम है।

उपलब्ध जानकारी से वैज्ञानिक अन्वेषण, या सत्यासत्य का निर्णय करना सहल नहीं। रसायन–शास्त्र की सिद्धि दैव–गति के प्रसाद से ही होती है, ऐसा कई मानते हैं।

वस्तुतः दैव–गति की कृपा भी निरुद्योगी, आलसी को प्राप्त नहीं होती। "यदि ईश्वर मेरा साथी है, तो बिना उद्योग के खाना भेज देगा" इस वृत्ति के लोगों से भी दैव प्रसन्न नहीं। "दैवं चैवात्र पंचमम्", चार भाग प्रयत्नों के और एक दैव का होता है। जिस का अन्वेषक बुद्धि और निष्ठा से कार्य करने का स्वभाव है, उस के लिये ही यह साध्य है। ऐसे ही लोगों ने बड़े २ कार्य किये हैं। मनुष्य को सतत यत्न करना जितना आवश्यक है, उतना ही वह यत्न अन्वेषक बुद्धि और नियम से होना भी नहीं तो बच्चों की सी क्रिया कर के माँ के हाथ से मार खानी पड़ती है।

मनुष्य को सतत उद्योग करते रहना चाहिये। उद्योगी होने पर ही भिन्न २ अड़चनों को मनुष्य सहलता से पार करने की युक्तियाँ

सोच सकता है। कितने ही वैज्ञानिक एक तत्त्व सिद्ध करने के लिये भिन्न २ क्रियाएँ प्रतिक्रियाएँ करते समय भिन्न २ अन्वेषण करते हैं। उन का फलप्रद होना परिस्थिति पर निर्भर रहता है, यह निम्न-लिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा।

आकस्मिक.—सेल्युलॉयड का अन्वेषण अकस्मात ही हुआ था। ऐसी घटनाओं के लिये अनुकूल वातावरण की अत्यन्त आवश्यकता है। **जॉन वेस्ले हियाट** एक बहुत निर्धन लोहार का लड़का था। घर की हीन परिस्थिति के कारण उस की शिक्षा अल्पवय में ही खण्डित हो गई। उस ने शिक्षण की ओर ध्यान देना छोड़ दिया और मुद्रणालय में मुद्रक (कम्पॉज़िटर) का कार्य करना प्रारम्भ किया। इस कार्य से मिलने वाले वेतन पर जीवन निर्वाह करना उस के लिये बहुत कठिन था, अतः शेष समय, अर्थात् रात में या रविवार को, उस ने बिलियर्ड की गेंद बनाना प्रारम्भ किया और कुछ काल बाद वह उस का उप-व्यवसाय (side business) ही बन गया, और इस से उस का निर्वाह भली प्रकार होने लगा।

उस समय बिलियर्ड की गेंद हस्तिदन्त की होती थी। खेल बड़े आनन्द का होने के कारण उस गेंद में उन्नति भी शीघ्रता से होती गई और हियाट की गेंद की माँग भी बढ़ती गई। परन्तु उस समय अफ्रीका में हाथी का शिकार कम होने लगा और हस्तिदन्त भी कठिनता से मिलने लगा। अतः खेल का शौक़ पूरा करने के लिये किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता पड़ी। ऐसा घन और कठिन पदार्थ निसर्ग में नहीं था, अतः बनाना पड़ा। उस के निर्माण के लिये २५००० रुपये के पारितोषिक की घोषणा की गई। उसे प्राप्त करने के लिये हियाट ने कृत्रिम हस्तिदन्त बनाना ही जीवन का ध्येय बना लिया। उस समय

इंग्लेण्ड में मुद्रक का कार्य हाथ से होता था, उस से हाथ और उंगलियों का चर्म कुछ नष्ट हो जाता था। ऐसे समय वह उस पर कलोडिन या इस प्रकार का कोई अन्य द्रव्य उस पर लगाया करता था। यह द्रव्य वह सदैव अपने घर की अलमारी में रखता था। एक दिन उंगली का चर्म नष्ट होने पर कलोडिन (इसे त्वचारस भी कहते हैं) लगाने के लिये वह अलमारी की ओर गया। देखता क्या है कि, बोतल गिरी पड़ी है और सब औषध तख्ते पर पड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, अपितु वह सूख कर बहुत कठिन भी हो गया है। ठीक समय पर औषध न मिलने से उसे बहुत निराशा हुई। परन्तु 'जो कुछ होता है, भले के लिये होता है' इस उक्ति का उसे ज्ञान था, तो भी उस का मन उसे स्वस्थ नहीं बैठने देता था। वह लगातार तड़पता रहा। उस के सब विचार उस कठिन पदार्थ पर केन्द्रित हो गये, कि वह कठिन क्यों हो गया है। बारबार वह पदार्थ उठाता और नीचे रखता। यह क्रिया करते समय उस की सूक्ष्मदृष्टि एक विशेष बात की ओर गई। उसे ज्ञात हुआ कि यह पदार्थ न केवल कठिन और अभंगुर है, अपितु उस में स्थितिस्थापकता भी है। उसे प्रकाश मिला और उस की दृष्टि के सामने २५००० रुपये की रक़म नाचने लगी। उसे यह निश्चय हो गया, कि इस पदार्थ की ओर विशेष ध्यान देने से आवश्यक पदार्थ का अन्वेषण होगा। उस ने कलोडिन और हस्तिदन्त का चूर्ण किसी द्रव में हल कर लेई तैयार की, और उस से एक गोला बनाया और उस पर लेई की अन्य पुटें दे कर पूर्व के आकार का एक गेंद बनाया। यह युक्ति बहुत समाधानकारक सिद्ध हुई। ऐसे गेंद खेलने के काम आने लगे, परन्तु कुछ दिनों के बाद एक अतिशय अद्भुत प्रसंग हुआ। एक खिलाड़ी

के हाथ का चुरट उस बनावटी गेंद को लगा। गेंद की ऊपरी पुटें एक एक भुरभुर कर जलने लगीं, और सारे कमरे में धुआँ ही धुआँ हो गया। चारों ओर शोर मचा। यह लेई ज्वलनशील है, परन्तु हमें न जलने वाला पदार्थ चाहिये, अतः लेई के मिश्रण में परिवर्तन की आवश्यकता है। इस स्थान पर गन्कॉटन् प्रयोग करने से ठीक रहेगा। इस से पूर्व गन्कॉटन् औषध के स्थान पर उपयोग में आता था। गन्-कॉटन् का मिश्रण साँचे में डाल कर गेंद बनाने की युक्ति उसे सूझी। परन्तु ऐसा करने से गेंद पर सिलवट पड़ जाती थीं, अतः गन्-कॉटन् निरुपयोगी सिद्ध हुआ। इसी समय हियॉट के पढ़ने में एक नया पदार्थ आया, सम्भवतः उस से कार्यसिद्धि हो, अतः उस ने एरण्डतैल, पायरॉक्सीन और कर्पूर मिला कर देखा कि वे परस्पर एक जान हो जाते हैं, और वह लेई बहुत कठिन और पारदर्शक भी होती है। इतना होने पर भी उस लेई से समाधान नहीं हुआ। कई यत्न किये गए, पर कहीं भी आशा की झलक दिखाई न दी। यह भी उस के सौभाग्य की बात थी। उस ने भिन्न २ मिश्रण बनाने प्रारम्भ किये। एक बार उस ने कर्पूर और गन्-कॉटन् परस्पर मिला कर उष्ण कर के, उसी स्थिति में दबा दिये। बस सिद्धि हो गई। जैसा कठिन और पारदर्शक पदार्थ चाहिये था, मिल गया।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि, कोई भी घटना कितनी ही अनपेक्षित क्यों न हो, उस पर पूर्ण विचार करने से बड़े अद्भुत कार्य सिद्ध हो सकते हैं।

दैव देता है और कर्म ले जाता है।—स्मिथ नाम के एक वैज्ञानिक हो गये हैं। वे जब एक विषय के पीछे पड़ते तो उसी में तल्लीन हो जाते, और ऐसा करते समय कितनी एक आवश्यक

घटनाएँ भी उन की दृष्टि में नहीं आती थीं । वे अपनी धुन में इतने मस्त थे कि उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं था। बहुत उग्र स्वरूप की क्रिया हो तो कदाचित् उन की समझ में आती थी, परन्तु समय बीत जाने के बाद ! स्मिथ ने एक बार कृत्रिम नील बनाया, परन्तु पुनः कभी वह उस की सिद्धि नहीं कर सका। नील कैसे बन गया, इस बात की ओर उस का सर्वथा ध्यान नहीं था। उस का उद्देश्य दूसरा ही था। इन बातों की ओर ध्यान देने के लिये उस के पास अवसर नहीं था। इसी प्रकार एक बार उस ने टी. एन्. टी. (ट्राय नायट्रोटोलुईन) बनाया। परन्तु यह पदार्थ तोप के गोलों में प्रयोग करने की उन्हें सूझ नहीं हुई । आश्चर्य की बात यह है, की उन्हों ने ही व्यवस्थित और समाधानकारक रीति से 'ट्रेसर बुलेट' बनाने की रीति अन्वेषण की। परन्तु अपनी आदत के अनुसार 'जाने दो, क्या जल्दी है' ऐसा विचार कर के 'सर्व अधिकार सुरक्षित' रखने का विनती-पत्र पेटन्ट ऑफ़िस में समय पर न भेज सके; दूसरा एक और आदमी उन से पूर्व पहुँच गया। 'देव देता है और कर्म ले जाता है', इसे ही कहते हैं।

अन्वेषकों के सभी प्रयत्न सफल होते हों, ऐसा नहीं; और सिद्ध प्रयोग अन्वेषक के लिये सदा कीर्ति भी नहीं प्राप्त करते। उदाहरणार्थ लीबिन् ने ब्रोमिन का अन्वेषण किया, तो भी वह गुप्त पड़ा रहा । किसी अन्य का अन्वेषण पढ़ने पर उसे ज्ञात हुआ, कि उस का तैयार किया हुआ पदार्थ ब्रोमिन है, और वह बहुमान से वंचित रहा। इसी प्रकार वोलर ने वॅनेडियम् धातु का अन्वेषण किया। परन्तु यह बात कुछ काल बाद उस के ध्यान में आई । लीबिन और वोलर की बात छोड़ दीजिये, उन्हों ने इतने नये २ अन्वेषण किये, कि एक कम या अधिक गिना जाये, इस की उन्हें चिन्ता

न थी, परन्तु सामान्य अन्वेषक के लिये ऐसी असावधानता बहुत हानिकारक होती है। ऐसी असावधानी उपरोक्त दोनों अन्वेषकों को ही शोभा दे सकती है, क्योंकि उन्होंने अन्य अनेक अन्वेषणों से संसार की आँखें इतनी चकाचौंध की हैं, कि उन के दोष क्वचित ही लोगों को दीखते हैं।

अखंड जिज्ञासा.—वयातीत मनुष्य के प्रकृति-स्वभाव को हम 'जिज्ञासा' या अन्वेषक बुद्धि कहते हैं, परन्तु यही गुण छोटे बच्चों में हो तो उसे 'मर्कट चेष्टा' कह कर क्षुद्र समझते हैं। जिज्ञासा, आज वैज्ञानिक सुधारणा के काल में अतिरेक से अथवा प्रत्येक वस्तु की ज्ञान पिपासा के कारण बहुत बढ़ गई है। जिज्ञासा के बड़े परिणाम, प्रयोगशाला में झाड़ू देने वाले इरा रेमसेन के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेंगे। रेमसेन बाल्यावस्था में प्रयोगशाला में उपकरण स्वच्छ करने वाला सेवक था। अवशिष्ट समय में वह इधर उधर घूमते न रह कर रसायन–शास्त्र की पुस्तकें पढ़ा करता था। ताँबे के ऊपर नत्रिकाम्ल (nitric acid) का कुछ परिणाम होता है, यह बारबार उस के ध्यान में आता था। पर वह क्या परिणाम है, यह उसे ज्ञात नहीं था। अतः उसे वही अज्ञात बात बारबार पढ़नी पड़ती, और इस के प्रति उस की जिज्ञासा क्षण २ बढ़ती रही। अन्त में वह इतना तड़प उठा कि अपनी जिज्ञासा पूर्ण करने का उस ने दृढ़ निश्चय किया। प्रयोगशाला में सेवक होने के कारण नत्रिकाम्ल प्राप्त करना उसे कठिन नहीं था। परन्तु अब ताँबे का प्रश्न रह गया। वह कहाँ से प्राप्त हो ? अन्ततः जिज्ञासा ने उसे शान्त न बैठने दिया। उस ने अपनी जेब में जितने ताँबे के सिक्के थे, निकाले। सेवक बालक के पास कितने पैसे होंगे ? केवल दो ही पेन्स् निकले।

निकृष्टावस्था में होते हुए भी उस ने एक पेनी उपयोग में लाने का निश्चय किया । उस सिक्के को प्लेट में रख कर उस पर नात्रिकाम्ल डाला । ऐसा करते ही उस प्लेट से अतिशय भयंकर और दम घोटने वाले धूएँ की लपटें निकलने लगीं । कमरा धूएँ से भर गया और वहाँ ठहरना असम्भव हो गया । वह बहुत डर गया । उस ने गम्भीर भाव से सोचा, यह ऐसा क्यों हुआ है और इस की शान्ति का क्या उपाय होगा ? सम्भवतः अपनी पेनी अम्ल से निकालने पर सब उपद्रव शान्त हो जाये ! उस ने पेनी चुटकी से उठा कर बाहर फेंक दी । धुआँ शान्त हो गया, परन्तु उंगलियों से भयंकर आग निकलने लगी । वह जान गया कि यह अम्ल का प्रभाव है । उस ने उंगलियाँ अपनी पॅन्ट से पोंछ लीं । अम्ल का पॅन्ट पर क्या प्रभाव होगा, यह उस के ध्यान में नहीं आया और पॅन्ट में छिद्र हो गये । अपनी अमूल्य पॅन्ट, पेनी और उंगलियाँ विकृत हो जाने पर प्रत्येक घटना को पूर्णरूप से ध्यान में ला कर सतत प्रयोग करने से उसे ज्ञात हुआ कि, नत्रिकाम्ल ताम्रवर्ण और भूरे रंग की लपटें उत्पन्न करता है, और, ताम्र जैसे पदार्थ को सहज ही द्रवीभूत कर देता है, तथा इस प्रकार बने मिश्रण का रंग हरित होता है । वह चर्म और कपड़े पर बहुत भयंकर परिणाम करता है । ऐसी ही ज्ञान लालसा से रेमसेन आगे चलकर रसायन-शास्त्रज्ञों में एक दीप्यमान तारक बन गया । इसी प्रकार बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं । उपरोक्त कथा से जिज्ञासा मनुष्य को प्रसिद्ध करने वाली प्रबल शक्ति है, ऐसा सिद्ध होता है ।

दैव योग से घटित बातों की छानबीन करने से उपयोगी उपाय निकल सकते हैं.—आकस्मिक होने वाले प्रसंगों को यदि कोई ज्ञानी ध्यान दे कर निरीक्षण करे, साधक बाधक रीति से ऊहापोह कर के उन का कारण ढूँढ निकाले या ढूँढने का यत्न करे, तो

उस से प्राप्त होने वाली कृतियाँ औद्योगिक क्षेत्र में बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक पास्टूर का ही उदाहरण लीजिये। अन्य लोगों को सर्वथा क्षुद्र जँचने वाली बातें पास्टूर को अत्यन्त महत्त्व की जँचती थीं, और वह उन के कारण ढूँढने के पीछे पड़ता था। उस का कहना था कि कोई भी घटना, चाहे छोटी हो या बड़ी, अकारण नहीं होती। उस कारण का अन्वेषण करना ही मनुष्य का आदि कर्तव्य है। क्षुद्र घटनाएँ यदि हम व्यवस्थित रीति से अपनी शक्ति के बाहर न जाने दें, तो हमें बड़ी घटनाएँ अपने आधीन करना कठिन न होगा। क्षुद्र घटनाएँ उस का मन अस्वस्थ करती थीं, और उस का पीछा किये बिना उसे शान्ति नहीं मिलती थी। उस की इस निष्ठा के कारण कार्य करते हुए उसे भिन्न २ कल्पनाएँ सूझती थीं। इस प्रकार के प्रयत्नों से उस ने एक के बाद एक कितने अन्वेषण किये। उस ने अपने अन्वेषणों से शस्त्रक्रिया, औषध, रसायन–शास्त्रादि में बहुत बड़ी क्रान्ति की। आज हम निश्चित रूप से महामारी का निवारण कर सकते हैं। इस का सब श्रेय पास्टूर को है। घटनाएँ देखना वा लिखना सब कर सकते हैं, परन्तु उस की छानबीन सब नहीं कर सकते। वह केवल पास्टूर ने ही किया और मान पाया। प्रत्येक क्षुद्र घटना का कारण अवश्य होता है, परन्तु उसे निश्चित करना कठिन है। मनुष्य कितना भी बुद्धिमान, विचारवान, निर्भीक और धैर्यवान हो, तो भी उस में बाज़ की तीक्ष्ण दृष्टि और हंस की क्षीरनीर वृत्ति तथा राजनीतिज्ञ की दूर दृष्टि के बिना दृश्य पदार्थों की तुलनात्मक दृष्टि से छानबीन करना असम्भव है। प्रत्येक कुछ न कुछ करता रहता है, प्रत्येक अपने आप को बड़ा दूरदृष्टिवान् और विशेषज्ञ समझता है। परन्तु नाना फ़डनवीस बहुत थोड़े ही बनते हैं।

गुण ग्राहकता की आवश्यकता.—अध्यापकों या सहपाठियों से प्रोत्साहन न मिलने के कारण तथा समय पर उन का महत्व समझ में न आने के कारण बहुत से अन्वेषण अप्रगट रह जाते हैं, जिन का यदि समय पर उपयोग किया जाता, तो हमारा पग बहुत आगे बढ़ता। इतना ही नहीं, अपितु जिन लोगों ने ये अन्वेषण किये, वे निराश न हो कर कदाचित् और भी बड़े २ अन्वेषण करते। अमेरिका में लौह के कारखाने के एंजिनीयर जेम्स गेले का इतिहास इस सम्बन्ध का स्पष्ट उदाहरण है। स्वानुभव से उसे ज्ञात हुआ कि उष्णतामान एक सा रख कर भी ग्रीष्मऋतु की अपेक्षा शरद्ऋतु में भट्टी में लौह बनाने का परिमाण अधिक होता है। यह पूर्व अनुभव के विपरीत लगभग असम्भव प्रतीत होता था। सब बातों का ऊहापोह कर के उस ने निष्कर्ष निकाला कि इस का मूल कारण भट्टी में छोड़ी जाने वाली हवा ही होगी। जनता की दृष्टि में ग्रीष्म या शरद्ऋतु की पवन में अन्तर नहीं होता। जो परिवर्त्तन होता है, वह केवल उष्णता के परिमाण में ही होता है। परन्तु इस को उस ने ऐसा अनुभव किया कि वायु की भिन्न २ गैसों के परिमाण में ऋतु की उष्णता वा ठण्डक भी अवश्य अन्तर डालती है। उस ने यह निश्चित किया कि जो भेद होता है, वह वायु के भीतर रहने वाले बाष्प में ही होना चाहिये। वायु जितनी अधिक उष्ण होती है, उतना ही अधिक वाष्प का शोषण करती है। इस से उस ने यह निष्कर्ष निकाला कि भट्टी में छोड़ी जाने वाली वायु पहले पहल ठण्डी करनी चाहिये। ऐसी ऊपर से पागलों की सी दीखने वाली सूचना से वहाँ के लोगों को इतना आश्चर्य हुआ कि उस के व्यवसाय बन्धुओं ने मित्र-धर्म से गेले की पत्नी को उस की प्रकृति किसी बड़े डाक्टर

को दिखाने का आग्रह किया। परन्तु आज यह प्रमाणित हो चुका है कि वायु ठण्ढी कर के पानी निकालने की योजना से ही लोह अधिक बनता है। पागलखाना किन के योग्य था यह पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं। बेचारा जेम्स गेले! पूर्ण ऊहापोह करने की बुद्धिमानता ही उस का अपराध थी।

बड़ा अपराध कौन सा?—शिक्षकों का अनुभव है, कि बड़े २ गहन विषय प्रतिदिन के व्यवहार के उदाहरणों से अधिक अच्छी प्रकार समझाये जा सकते हैं, जिस से विषय सुकर हो जाता है। वह पद्धति अब सर्वमान्य है, पर बहुधः इस से उलटा अनुभव होता है, और ऐसे उदाहरण देने वाले को जनता का उपहास सहना पड़ा है। उपमा ठीक है या नहीं, यह कौन देखता है? मूलतत्त्व की ओर ध्यान न दे कर उपमा पर ही अधिक बल दिया जाय तो उपहास निश्चित है। न्यूलैण्ड नामक अंग्रेज ने एक ही विवरण पत्र में सब तत्त्वों का, गुण वैशिष्ट्य के अनुसार, समावेश किया और उसे वैज्ञानिकों के सभा के सन्मुख रक्खा, और कितनी एक बातों का स्वर—सप्तक के साथ तुलना कर के स्पष्टीकरण किया। रसायन—शास्त्र जैसे गंभीर विषय की संगीत जैसे हलके विषय के साथ तुलना करने से बड़ा प्रमाद समझा गया। उस सभा के अध्यक्ष से लेकर सब लोगों ने उस की हँसी उड़ाई और इस भीषण प्रसंग से छुटकारा पाने के लिये उस ने आत्मघात करने का निश्चय किया। परन्तु कुछ दिनों के बाद उस को इसी अन्वेषण के लिये सब से बड़े मान का रॉयल सोसायटी का "डेव्ही मेडल" मिला।

योग्य प्रोत्साहन का अभाव.—हज़ारों उत्साही और होनहार युवकों और लोगों की आशाएँ और विशिष्ट कल्पना शक्तिओं का

नाश जगत में हुआ है, और वे कुचले गये हैं। इस का कारण प्रोत्साहन का अभाव ही है। इसी अभाव के कारण आज बहुत उत्साही लोगों को निराशा हुई है, और वे आत्मविश्वास खो बैठे हैं और कर्त्तव्यपरांमुख हो गये हैं। इतना होने पर भी धीरज न छोड़ कर निष्ठा के साथ सतत उद्योग से कार्य कर प्रसिद्धि पाने वालों के नाम भी कम नहीं हैं। इस स्थिति का सब से बड़ा कारण मनुष्य का स्वार्थ है। दूसरों की अच्छाई किसी को भली नहीं लगती। यदाकदाचित् कोई सिर उठाने लगे तो उसे नीचे खींचने के लिये और उसे पराभूत करने के लिए लोगों के, विशेषतः गुप्त शत्रुओं के, सतत प्रयत्न होते रहते हैं। उस में गुरु-शिष्य के नाते का भी अपवाद नहीं। वस्तुतः शिक्षक को अपने विद्यार्थी ऐसे तैयार करने चाहियें तथा उन में इतनी प्रवीणता और आत्मविश्वास होना चाहिये कि समय पर गुरु भी उन के सामने झुकने में लज्जा न अनुभव करे। परन्तु ऐसे गुरु कहाँ मिलते हैं। उन के लिये 'शिष्यात् इच्छेत् पराजयम्' यह नियम केवल पढ़ने के लिये है। इस में स्वान्ट अर्‍हेनिअस् की बात ध्यान देने योग्य है। उस के शिक्षक को अपने किसी होनहार और बुद्धिमान शिष्य का, अति तीव्र बुद्धि और सप्रमाण तर्क से, उस से अधिक कार्य करना असह्य प्रतीत होता था। युवक स्वान्ट अर्‍हेनिअस् ने सतत प्रयोग कर के, भिन्न २ क्षारों के मिश्रणों का विलयन (solutions) एक विशेष कल्क होता है, अन्वेषण किया, और एक दिन ढंग से सब बातें अपने आचार्य से कह दीं। परन्तु उस समय यह 'मुनि' किसी अन्य कल्पना में व्यक्त थे। उन्होंने अपने शिष्य के विचार केवल सुन लिये और कहा "अच्छा, तुम नये तत्त्व निर्माण करना चाहते हो! बहुत अच्छा! अब तुम जाओ।" इस धुतकार से उस उत्साही युवक अर्‍हेनिअस् को

कितनी निराशा हुई होगी, इस की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अर्हेनिअस् बलवान मन का होने के कारण विशेष हताश न हुआ, कारण कि उसे सहानुभूति की विशेष अपेक्षा न थी। होलिअम् और थूलिअम् धातुओं के अन्वेषक अपने गुरु क्लीव्ह को वह भली प्रकार जानता था। आगे चल कर इस विवरण पर उस ने अपना निबंध डाक्तरी की (पीएच्. डी.) परीक्षा के लिये पेश किया। तब भी अत्यन्त अप्रसन्नता से परीक्षा मंडल ने उसे उपाधि अर्पण की। उन लोगों को इस की बात विशेष रूप से जची नहीं। कुछ दिनों के बाद रसायनशास्त्र के अध्यापक का स्थान ख़ाली हुआ, किन्त उसे वह स्थान नहीं मिला, क्यों कि वह क्या कह रहा है यह लोग नहीं समझते थे, और न ही समझने की इच्छा रखते थे। इस का कारण उन का घमंड था। इस दुधमुँहे बच्चे के पास क्या होगा ? इतनी घटनाएँ हो गईं, तो भी इस धीर वीर ने उद्योग जारी रक्खा। कुछ दिनों बाद उस ने उसी अध्यापक के स्थान को सब के नाक पर ठूँस लगा कर प्राप्त किया, और सब से बड़े 'नोबल प्राईज़' का मान भी उसे ही मिला। आज उस का सिद्धान्त सर्वमान्य है।

निष्ठा और आत्मविश्वास क्या नहीं कर सकता ? —रास्ते में कितने ही रोड़े आयें, तो भी अपने चारों ओर क्या और क्यों हो रहा है, यह जानने की तीव्र तृष्णा रखना अपना कर्तव्य है। मनुष्य को उद्योगी होना चाहिये। इस प्रकार से कार्य करने वाले निस्वार्थी लोग अल्प होते हैं। परन्तु कुछ लोगों में ध्येयवादी जिज्ञासा न होती तो सूर्यास्त के अनन्तर सूर्यप्रकाश जैसा प्रखर प्रकाश और उष्णता सिद्ध न होती। वैसे ही गङ्गा के पानी में दैविक पवित्रता किस कारण है, इस का वैज्ञानिक विवरण प्रकाश में न आता।

गंगा का तीर्थ.—जिसे लोग 'स्वर्गीय पानी' या अमृत-तुल्य पानी समझते हैं, उस गंगा के पानी में ऐसे विशेष गुण क्यों और कहाँ से आये, वह तीर्थ कैसे बना, यह बड़ा गूढ़ है। वर्तमान में इस गूढ़ का कुछ ज्ञान हो गया है, वह यह है.— पूर्ण आत्मविश्वास के कारण अपने नायट्रोजन के परीक्षण में एक पंच-सहस्रांश भूल जिस प्रकार रॅले को आरगॉन वायु का अन्वेषण करने का कारण हुई, उसी प्रकार की एक छोटी सी भूल ब्रिग् और मेंडेल को दो स्थानों की हायड्रोजन में मिली। इस अन्तर की ओर उन्हें ध्यान देना आवश्यक था। विचार करने के बाद उन को एक ही कारण प्रतीत हुआ, कि हायड्रोजन हलका और भारी दो जातियों का होगा और इस सिद्धान्त से उपरोक्त अन्तर का समाधान होगा। हायड्रोजन के मूलतत्त्व दो जाति के हैं या नहीं, यह निश्चय करना पड़ा। अन्वेषण से यह इसी प्रकार सिद्ध हुआ। आज तो एक अन्य प्रकार के तिगुने भार के हायड्रोजन का भी अन्वेषण हो गया है। आज तक कम से कम नौ प्रकार का पानी ज्ञात हुआ है, उन में से कई गुणकारी हैं। कई में जीव जन्तु का सर्वथा अभाव है। ऐसे जन्तुनाशक या रोगनाशक और देह को सुदृढ़ बनाने वाले जल को 'दैविक देन' कहना, और ऐसा जल देने वाली गंगा को 'देव कोटि' में समाविष्ट करना क्या मनुष्य का दोष है? परन्तु संसार की लीला देखो! जिस गंगा का वर्णन पुराणों में रस-भरा किया है, उस गङ्गोदक का महत्त्व हिमालय की चोटियों पर सूर्यताप से बचे हुए पानी पर अवलम्बित है। यह सत्य बतलाने का मान परदेसिओं ने कमाया। इसी प्रकार बरगद जैसे खर और बड़े पत्तों के वृक्ष की छाया के नीचे महात्मा समाधि क्यों लगाते हैं, यह भी स्पष्ट हो जायेगा। वहाँ की पवन जड़ पानी से भारी होने के

कारण शुद्ध और आह्लादकारक होती है, बुद्धि और एकाग्रता को उत्तेजना देती है। संसार की अन्य नदियों का पानी गंगोदक की तरह न होने का कारण यह है कि गंगा के उद्गम के इतस्ततः परिस्थिति अन्य स्थानों से भिन्न है। गंगोतरी पर का हिमालय का भाग सदा हिमाच्छादित रहता है। यहाँ सदा हिम रहने पर भी उष्णतामान अधिक होता है (१४०° फॅ.)। कारण कि यहाँ एक विशेष स्थिति के कारण सूर्यकिरणों का ताप अधिक प्रखर होता है। इस से हलके पानी की बाष्प शीघ्र बनती है, और जड़ पानी (जिस में उपरोक्त गुण होते हैं) पीछे बच जाता है। यह जल धीरे २ आ कर गंगा से मिल जाता है या ऐसे पानी की ही गंगा बन जाती है।

विद्युत् के रंगीन दीप.—सूर्यतेज से स्पर्धा करने वाला आज के विद्युत् का दीप्यमान प्रकाश और पूर्वकालीन दीपावली के काँच के दीपकों के प्रकाश को लज्जायमान करने वाला सिनेमागृह का प्रचुर श्वेत प्रकाश, वैसे ही रोगी के कमरे का प्रकाश या निरंजन की ज्योति से भी कम प्रकाश देने वाला निऑन् का दीप, ये सब हमें क्या बताते हैं? यह अन्वेषण, वायु द्रवित करने वाले विख्यात जॉर्ज क्लॉड को अकस्मात सूझा। एक प्रयोग के समय क्लॉड को ऐसा मालूम हुआ कि निऑन् वायु और पारद के बाष्प एक साथ मथने से, परस्पर घर्षण के कारण दीप्यमान होते हैं। बस, प्रकाश का प्रश्न हल हो गया।

रोगों का निवारण और निर्विघ्न जीवन.—आज तक प्राप्त हुए रोग संहारक औषध और नये अन्वेषणों से संभव हुआ निर्विघ्न जीवन, जगत् की सत्यान्वेषण की प्रबल इच्छा, तथा प्रयत्नों के लिये आवश्यक निष्ठा और आत्मविश्वास, आदि का दीप्यमान

फल है । लार्ड रेले को वायु और क्षार के नायट्रोजन के तोल में केवल ०.००५ प्रतिशत अन्तर मालूम हुआ । वह इस अन्तर का भेद जानने के पीछे पड़ा और नये गैस उस ने जगत के सामने रक्खे । यदि उसे अपनी शक्ति पर विश्वास न होता, तो वह कैसे सफल होता । आगे चल कर इन गैसों के गुणों का निर्णय रॅमसे ने भिन्न २ क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा सावधानी से जाँच कर किया । वे गैस उसे सर्वथा नई कोटि के प्रतीत हुए । इन गैसों का अन्वेषण रसायन-शास्त्र के इतिहास की बड़ी चमत्कारपूर्ण रम्य कथा है । सूत से भी स्वर्ग प्राप्त हो सकता है, यह इस का जीवित प्रमाण है । इन्हों ने झूठी पौराणिक कल्पनाओं को हिला दिया और उन का मूलोच्छेद कर दिया । जिस से आज हमें बहुत सुखसुविधाएँ मिली हैं । आज हमें सूर्यतेज जैसा दीप्यमान प्रकाश, वायु पर अधिकार, प्रकाश और खनियों का सुखकर जीवन, महासागर, कन्दरों और पर्वतादि के विघ्नपूर्ण मार्ग सुकर होना और बहुत वर्षों तक समुद्र में डूबी हुई सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति आदि सब इन गैसों से ही सिद्ध हुए हैं ।

एक की खोज करने से अन्य की प्राप्ति.—कुछ ध्येय रख कर प्रयोग करते समय कितनी बार अकल्पित बातें दृष्टि के सामने आती हैं, और वह जानकारी बहुधः बहुत महत्त्व की होती है । इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं । उन में कृत्रिम रंग (coal tar colours) भी एक है । दूसरा उदाहरण अयोग्य संभोग से होने वाले घृणास्पद रोगों पर रामबाण सिद्ध हुए सॅलवर्सन (६०६) का है । इस सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है कि डॉ. एर्लिच मलेरिया पर रामबाण औषध के अन्वेषण में लगे हुए थे । इस के लिये कितने ही चूहे, खरगोश, गिनिपिग्स जानवरों

में प्रबल औषधों के इन्जेक्शन करते थे, और उन का प्राणियों पर परिणाम देखते थे। ये औषध वे सदा बदलते रहते थे। उन को विशेष जन्तु-नाशक तथा शरीर के अन्य धातुओं को अनपाय-कारक औषध चाहियें थे। इस पर ६०६ प्रयोग किये गए। अन्ततः ६०६ प्रयत्न के अनन्तर फिरंग रोग के जन्तु पर उत्तम परिणाम-कारक विष का अन्वेषण हुआ। यह अन्वेषण छः सौ छटा प्रयत्न था, अतः इस औषध को ६०६ ही कहते हैं। एक अन्वेषण करते २ दूसरा ही महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हो जाने का यह एक स्पष्ट उदाहरण है।

सच्ची वैज्ञानिक मनोवृत्ति.—शीले, क्लोरीन गैस का अन्वेषक है। उस गैस में कपड़े के रंग उड़ाने का गुण उसे प्रतीत हुआ। इस गैस के अन्वेषण के थोड़े दिनों बाद बर्थोलेट नामक रसायनज्ञ को यह रंग उड़ाने का धर्म साधारणतः उपयोग में लाने की सूझी और उस ने एक पद्धति निश्चित की। इस कृति का सर्वाधिकार अपने आधीन न रख कर उसने सब जन-कल्याण के लिये छोड़ दिया। ऐसा बर्ताव सचमुच वैज्ञानिक की उच्चतम मनोवृत्ति बताता है। वैज्ञानिकों का यह कहना है कि हम पूर्व-कालीन व्यवसाय-बन्धुओं की कृतियों से लाभ उठाते हैं, अतः हमें अपने अन्वेषण आगामी पीढ़ी के लिये इकट्ठे कर रखने चाहियें। अपने अन्वेषणों का लाभ हमें न ले कर उन्हें जनता के कल्याण पर निछावर करने चाहियें। इस प्रकार अपने ज्ञान से संसार का अधिक कल्याण करने की ओर उन का मन रहता है। दूसरा उदाहरण माँयसाँ का है। इस नागरिक ने विद्युत् की तापभट्टी (electric furnace) तैयार की। इस भट्टी से कितनी ही असाध्य बातें सिद्ध हुईं। इस से कभी न पिघलने वाले पदार्थ

मक्खन के समान पिघलाये जा सकते हैं। इतनी उपयोगी रचना को मॉयसाँ ने स्वाधीन नहीं रखा। यदि वह ऐसा करता तो उसे अलोट सम्पत्ति प्राप्त होती। यह कितना स्वार्थत्याग है? नोबेल प्राईज़ पाने वाले ऐसे ही लोग होते हैं। जिन लोगों को यह पारितोषिक मिला है, उन्हों ने करोड़ों की सम्पत्ति लोकोपयोगी कार्यों के लिये अर्पित कर दी है।

मंगल पर मनुष्य–वास की सम्भावना

मंगल सब से अधिक शक्तिमान ग्रह है। यह पृथ्वी-पुत्र माना जाता है। यह प्रभावशाली पुत्र अपने रक्त तेज से बहुत ही कुतूहल उत्पन्न करने वाला है। पूर्वकाल में यूरप में यह लौह का देवता माना जाता था। उस समय सात ही धातु और सात ही ग्रह विदित थे। प्रत्येक ग्रह को एक २ धातु की पुष्टि करने वाला माना जाता था। प्रत्येक धातु अपने २ ग्रहमान से न्यूनाधिक तैयार होती है, ऐसा विचार था। मंगल लाल रंग से रक्त का अर्थात् शौर्य का 'आद्य देवता' बन गया, और वह कलह उत्पन्न करने वाला नारद निश्चित हुआ। ज्योतिषशास्त्र में इस ग्रह को विशेष महत्त्व दिया जाता है, और इसी लिये बहुत लोगों को इस से विशेष डर होता है। ज्योतिष–शास्त्र के अनुसार यह पाप-ग्रह है। इस के शरीर में मनुष्य को निकृष्टावस्था से उच्चावस्था में पहुँचाने का जैसा समर्थ है, वैसे ही इस से मारकाट, रक्तपात, हत्याएँ आदि भी होती हैं। इस ग्रह से मनुष्य को एक प्रकार का आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है, ऐसा समझा जाता है। यदि यह सच हो, तो वह मनुष्य को समाज में उच्च स्थिति पर पहुँचाता होगा, इस में क्या आश्चर्य है। यह बात हुई पुरुष वर्ग की। परन्तु स्त्रियों की तो इस ग्रह का नाम उच्चारते ही घिघ्घी बँध जाती है। उन के मत में यह ग्रह बहुत अनिष्ट है। इस का कोप वैधव–कारक है। उसे संतुष्ट रखने के लिये स्त्रियाँ जपजाप, उपवासादि करती हैं।

इस विशेष गुण का अग्नितेज, दीप्तिमान और शक्तिमान ग्रह सूर्यमंडल में हमारी पृथ्वी के पास है। अतः इसे भौम कहते हैं।

इस निकट सम्बन्ध का अपनी पृथ्वी पर विशेष परिणाम होगा। अतः उस की ओर खगोल शास्त्रज्ञों की अधिक दृष्टि गई, और इस ग्रह के सम्बन्ध में विशेष यत्न के साथ जाँच होने लगी। दूरवीक्षण यन्त्र लगाये गए, उस पर भिन्न २ लोगों को भिन्न २ बातें दीखने लगीं। कोई कहता, मंगल पर हमारी जैसी बस्ती होगी। किसी को नहरें दीखतीं, तो कोई निश्चित रूप से कह देता, कि वहाँ मनुष्य बस्ती है और वहाँ के लोग पृथ्वी पर विद्युत् सन्देश भेजते होंगे। मंगल पर पहुँचने के लिये प्रयत्न चालु हैं। इस के लिये बड़े २ पारितोषिक भी रखे गये हैं। मनुष्य बस्ती होने के लिये हमारे यहाँ जैसी वायु भी वहाँ चाहिये, और वह उस ग्रह पर होनी सम्भव है या नहीं, इस का कौन विचार करता है। खगोल–शास्त्रज्ञ को रसायन–शास्त्र के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान नहीं होता, अतः उपरोक्त विधान किये गए। अब उस ग्रह पर हमारे यहाँ जैसी वायु की सम्भावना है या नहीं, यह हम देखेंगे।

हमारी वायु.—एक समय आदि तत्त्व मानी गई हमारी वायु एक विलक्षण पदार्थ है। वायु में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं, जिन का हमारे पूर्वजों को तनिक भी ज्ञान नहीं था। १८९६ तक हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प था। नये २ प्राप्त हुए बहुत से पदार्थ पहले पहल निरुपयोगी जचते हैं। परन्तु ईश्वर निर्मित कोई भी पदार्थ निरुपयोगी नहीं है, यह सिद्धान्त कुछ समय तक भूला हुआ था। परन्तु जिज्ञासा, मनुष्य स्वभाव होने के कारण, स्पष्टीकरण का प्रयत्न जारी रहा, और एक के बाद एक विस्मयकारक नई २ बातें दृष्टिगोचर हुईं।

ऐतिहासिक.—अपनी वायु का इतिहास बहुत मनोरंजक है, तथा वह अधिक ज्ञानबुद्धिवर्द्धक और साँस्कृतिक दृष्टि से अधिक महत्त्व का है। जिस पदार्थ के सम्बन्ध में पूर्णरूप से ज्ञान होना आवश्यक है, उस के सम्बन्ध में हम पूर्ण अज्ञानी थे। परन्तु प्रयत्न

से प्रत्येक बात साध्य है। अपनी वायु पंचमहाभूतों में से एक है, ऐसा एक समय विचार था। परन्तु यह विचार थोड़े दिन बाद ग़लत सिद्ध हुआ। उस में भिन्न २ गैस दृष्टिगोचर हुए।

पुराने अन्वेषण.—वायु में जल या बाष्प होती है, यह बहुत प्राचीन काल से ज्ञात था, परन्तु वह सदा नहीं रहती, ऐसा माना जाता था।

बहुत शताब्दी पूर्व चीनी लोगों ने अन्वेषण किया कि, वायु दो प्रकार की गैसों से बनी हुई है, एक चेतन और दूसरी अचेतन।

१६७४ ईसवी में जॉन मेयन नामक अंग्रेज़ ने वायु के सम्बन्ध में समग्र जानकारी पर ग्रन्थ लिखा। लगभग उस समय जीन रे नामक फ्रेंच ने वायु मिश्रण नहीं और संयुक्त पदार्थ भी नहीं, ऐसा निश्चित किया, परन्तु वह नहीं कह सका कि वायु किन २ गैसों का समूह है।

१७५४ में जोसेफ् ब्लॅक् को वायु में कार्बन द्वयाम्लजिद ज्ञात हुआ।

१७७२ ई० में रदरफ़र्ड को वायु में नायट्रोजन मिला।

१७७२ ई० में कॅव्हेन्डिश ने सिद्ध किया कि वायु में नायट्रोजन है और वायु मिश्रण है।

१७७४ ई० में प्रीस्टली को वायु में अम्लजन (oxygen) प्राप्त हुआ।

इस प्रकार वायु में भिन्न २ गैस सिद्ध होने के बाद उन का परिमाण निश्चित किया गया।

लगभग १८८४ में दूमा ने वायु के गैसों के भार का परिमाण निश्चित किया।

आधुनिक संशोधन.—१९ वीं शताब्दि के अन्त में अर्थात् १८९४ ईसवी से वायु की ओर वैज्ञानिकों का अधिक ध्यान गया।

१८९५–१८९६ में सर विलियम् रॅमसे और हमारे बंगलोर इन्स्टि-ट्यूट के डॉ. ट्रॅव्हर्स ने हीलिअम्, निऑन्, आरगॉन्, क्रिप्टॉन् और ज़ेनॉन् ऐसी पाँच अचेतन और नई गैसों का अन्वेषण किया।

अपनी वायु में गैसों का परिमाण, गत कितने वर्षों से एक जैसा ही है, और आगे भी एक जैसा रहेगा, ऐसा माना जाता है, तो भी बहुत पुरातन काल में अर्थात् पृथ्वी की बाल्यावस्था में यहाँ की वायु सर्वथा निराली तथा संकीर्ण और दम घोटने वाली होगी, ऐसा अन्वेषणों के अनन्तर सिद्ध हुआ है। प्राणवायु (oxygen) उस समय पृथक् भाव से हवा में संचार करता नहीं था, वैसे ही बहुत सा नायट्रोजन, सोडिअम् और पोटॅशिअम् आदि धातुओं के पास तथा अम्लजन के साथ क्षार रूप में संयुक्त स्थिति में था, क्यों कि उस समय पृथ्वी पर होने वाली उष्णता से उसे संयुक्त रूप से पृथक् होना कठिन था। क्लोरिन तथा हायड्रोक्लोरिक ॲसिड गैस उस समय बाष्पयुक्त और कार्बनद्वयाम्लजिद की बनी थी। आज की और उस समय की वायु का रूप निम्नलिखित प्रकार का था।

स्वयंभू	पीछे उत्पन्न हुए तथा पूर्वकालीन
अचेतन वायु	अचेतन वायु
—	ऑक्सिजन
नायट्रोजन	नायट्रोजन
बाष्प	बाष्प
कार्बन द्वयाम्लजिद	कार्बन द्वयाम्लजिद
क्लोरीन	—
—	ओझोन
हायड्रोजन क्लोराइड	—
—	हायड्रोजन पर ऑक्साइड

उपरोक्त विवरण से यह सहज ही ध्यान में आ जायगा कि, स्वयंभू क्लोरीन् तथा हायड्रोजन क्लोराईड जा कर उन के स्थान पर बड़े परिमाण में अम्लजन (oxygen) आ गया है । पृथ्वी तल पर और आकाश में होने वाली उथल पुथल से यह अंतर पड़ा है । पहले २ यह अन्तर अत्यन्त वेग से तथा बड़े परिमाण में होता था, परन्तु बाद में इस की गति मन्द हो कर बहुत समतोल रूप से जारी है । उपरोक्त दोनों कोष्टकों में धूल के कणों का कहीं भी उल्लेख नहीं, तो भी ये कण बहुत परिणामकारक हैं, ऐसा आगे के वर्णन से स्पष्ट होगा । संक्षेपतः हमारी पृथ्वी गोलक की वायु पूर्वारम्भ में आज से बहुत भिन्न थी और उस समय वहाँ प्राणियों का जीवित रहना संभव नहीं था । अपनी वायु पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से यह प्रतीत होता है कि, सब स्थानों की वायु एक सी घन या विरल नहीं । साधारणतः वायु के दो भाग किये जा सकते हैं (१) पृथ्वी के पृष्ठ भाग की (२) मेघ से ऊपर दूर आकाश की ।

पृथ्वी के पास की वायु साधारणतयः घन होती है। जैसे २ हम ऊपर जायें, वैसे २ ही वह विरल होती जाती है। पाँच मीलों तक ही श्वासोच्छ्वास करने की सम्भावना है । ऐसा स्थूल दृष्टि से अनु-मान लगाया गया है कि २००० मीलों तक थोड़े बहुत परिमाण में वायु विद्यमान है, तो भी पहले के १२ मीलों तक लगभग ९० प्रतिशत वायु के भार का हिस्सा है।

पृथ्वी के पृष्ठ तल का भाग.—आज की अपनी वायु में अम्लजन, नायट्रोजन, कार्बन-डाय-ऑक्साइड, वाष्प, धूसर, ओझोन, हायड्रोजन-पर-ऑक्साइड, हीलिअम्, निऑन्, आरगॉन्, क्रिप्टॉन और ज़ेनॉन जैसे विरल गैस सदा होते हैं । कभी २ हायड्रोजन सल्फ़ाइड, सल्फ़र-डाय-ऑक्साइड, और अमोनिआ, नायट्रोजन, ऑक्साइड और ॲसिड भी वायु में स्थलानुसार पाये जाते हैं ।

हंप्रे नामक एक वैज्ञानिक ने भिन्न २ ऊँचाई की वायु में भिन्न २ गैसों का परिमाण निम्नलिखित निश्चित किया है.—

ऊंचाई फुटों में	नायट्रोजन	अम्लजन	आरगॉन	कार्बन द्वयाम्लजिद	हायड्रोजन	हीलिअम्
	परिमाण				परिमाण	
३१०	७७·८१	२०·९५	०·९४	०·०३	०·०१	०·००
९०३	७९·५६	१९·६६	०·७४	०·०२	०·०२	०·००
१८०६	८४·४८	१५·१०	०·२२	०·००	०·२०	०·००
३१००	८६·१६	१०·०१	०·०४	०·००	३·७२	०·०३
४९०६	२२·७०	१०·३८	०·००	०·००	७५·४७	०·०५
६२००	१·६३	०·०७	०·००	०·००	९७·८४	०·०६
७३०२	०·००	०·००	०·००	०·००	९९·७३	०·०७

उष्णतामान.—इस भाग में हर तीन सौ फ़ुट पर एक अंश उष्णता कम होती जाती है। यह यदि साधारण परिमाण हो, तो भी कालमान से स्थान २ पर उष्णतामान न्यूनाधिक होता है। उदाहरणार्थ ५–७ फ़र्वरी १८९२ ईस्वी में साईबेरिया में–९०° फ़. शीतता थी। साईबेरिया देश समुद्र से सैंकड़ों मील दूर है। इस से उत्तर ध्रुव के प्रदेश से भी उस स्थान की वायु अधिक ठण्डी होती है। उत्तर ध्रुव की ओर का बहुत भाग पानी के अवगुंठित होने के कारण वायु की उष्णता में बड़ा परिवर्तन नहीं होता, परन्तु यह बात साईबेरिया में नहीं है। शीत काल के समान सब से अधिक प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु उत्तर आफ़्रिका के जेफ़ारा रण में अज़िज़ा स्थान पर है। वहाँ उष्णता का परिमाण १२६° फ़॰ तक जा चुका है। पृथ्वी के पृष्ठ भाग पर मनुष्य वास के स्थान जाँचने से यहाँ–४०° फ़॰ से नीचे और ११८° फ़॰ से अधिक परिमाण नहीं होता।

वायु का दाब.—वायु की गैसों का उपरोक्त परिमाण, जैसे २ हम ऊपर जायें, वैसे २ कम होता जाना चाहिए, परन्तु यदि कोई कहे कि पृथ्वी तल पर सब स्थानों की वायु एक सी भारी होगी और उस का दाब एक सा होगा, तो यह अनुमान अशुद्ध होगा। कारण कि पृष्ठ भाग का तल सब स्थानों पर एक सा नहीं। एक ओर कई स्थानों पर गगन चुम्बित हिमालय की नाग जैसी ऊँची चोटियाँ हैं, तो दूसरी ओर पूर्व साईबेरिया में पाताल रूप गहरे भाग हैं। यहाँ बहुधः ८०० मि० मी० से भी अधिक दाब होता है, कारण कि यह भाग समुद्र तल से बहुत नीचा है।

गैसों का उपयोग.—वायु की भिन्न २ गैसों की विशेषता क्या है और प्रत्येक का हमारे लिये उपयोग है या नहीं, यह कुछ वर्ष पूर्व हम भली प्रकार नहीं जानते थे। अतः जिस के विषय में जिसे जो मालूम हुआ वह उपयोगी और जो अज्ञात रहा वह निरुपयोगी मानने की प्रथा थी, और वायु के उपयोगी और निरुपयोगी दो भाग किये जाते थे। परन्तु निश्चित रूप से पहले निरुपयोगी ज्ञात हुए गैस आज शरीर स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त महत्त्व के हैं, ऐसा सप्रमाण सिद्ध हुआ है।

कुछ दिन पूर्व यदि कोई यह कहता कि पानी और अन्य अन्न की भाँति वायु भी एक अन्न है, तो उसे पागल समझा जाता। परन्तु आज यह अन्न सिद्ध हो चुकी है। वायु के बिना ज्वलन, अन्नपाचनादि क्रियाओं की सम्भावना नहीं। इस के अभाव में वृक्ष, फल, अन्नादि उगने की सम्भावना नहीं। अब हम यह देखेंगे कि अपनी वायु की भिन्न २ गैसों का महत्त्व क्या है और यह कि उन के अभाव में हमारी क्या अवस्था होगी।

उपयुक्त गैसें.—

(१) **अम्लजन (oxygen).**—अम्लजन अन्न है, इस से शरीर में बल उत्पन्न होता है। वायु के बुरे परिणाम का सामना करने के लिये उष्णता उत्पन्न होती है। श्वासोच्छ्वास, ज्वलन, सड़ान, पकना, खमीर उत्पन्न होना, ज़ंग लगना, जमना आदि क्रियाएँ इसी से होती हैं। यह कृमि, कीटादि का संहार करती है। इस से सर्वत्र स्वच्छता और नीरोगिता रहती है। यह सब से उत्तम शुद्धिकारक है।

(२) **नायट्रोजन.**—यह अम्लजन की अधिकता को कम करती है। यह अम्लजन में प्रवेश कर एक रूप हो जाती है, और उस की तीक्ष्णता को कम कर के प्रकृति को सुव्यवस्थित रखती है। यह विशेष जंतुओं और वायु में उपस्थित विद्युत् की सहायता से वृक्षों के लिये आवश्यक नायट्रेट्स क्षार निर्माण करती है, और वनस्पति उस नायट्रोजन से प्रोटीन निर्माण कर प्राणिमात्र की आवश्यकता पूरी करती है, जिस के बिना प्राणियों का जीवन असंभव है।

(३) **कार्बन-द्वयाम्लजिद.**—आजतक जिस गैस को शत्रु, संहारकर्त्ता आदि कह कर आरोप लगाये गए हैं, वही अज्ञात गैस अब बहुत हितकारी सिद्ध हुआ है। यह गैस पृथ्वी की वायु को समावस्था में रखती है, अर्थात् उसे अधिक उष्ण वा शीत नहीं होने देती। यह पानी से मिलकर एक ॲसिड बनाती है, और उस ॲसिड की सहायता से भूमि, पत्थर, चट्टानादि पर प्रतिक्रिया कर के उन्हें भुरभुरा कर देती है। वह भुरभुरी मिट्टी पर्वतों से बह कर वर्षाऋतु में खेतों में आ जाती है और उन्हें उपजाऊ बना देती है।

कार्बन-द्वयाम्लजिद् बनस्पतियों का अन्न है। बनस्पतियों के अभाव में मांसाहारी लोगों का भी जीवित रहना कठिन है, क्योंकि बहुत से भोज्य प्राणी हरित पत्तों पर अपना निर्वाह करते हैं।

(४) **वाष्प.**—कार्बन-द्वयाम्लजिद् से भी अधिक, वायु में उपस्थित वाष्प पृथ्वीतल का उष्णता-मान सम रखते हैं, क्योंकि इस से सारी पृथ्वी पर पानी बढ़ जाता है, और कोई भी वस्तु शुष्क नहीं रहती। सब देशों की उष्णता प्रमाण में, इस से ही रहती है। यह एक प्रकार का पृथ्वी पर चढ़ा हुआ ओढ़ना है।

बनस्पति, कार्बन-द्वयाम्लजिद् पचा कर मध्वौज (sugar) बनाती हैं, जो उन का एक अन्न है।

(५) **ओज़ोन.**—कार्बन-द्वयाम्लजिद् और वाष्प के समान ओज़ोन भी पृथ्वी की उष्णता सम रखने में सहायक है। इस की विशेषता से ध्रुव-प्रदेशों की तथा मेघ के ऊपर की वायु कम ठण्डी होती है।

(६) **हीलिअम्.**—२० वीं शताब्दी के आरम्भ तक यह गैस निरुपयोगी माना जाता था, परन्तु अब यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस से श्वासोच्छ्वास आसानी से होता है। इस के अभाव में सन्धिवात और कुबड़ापन आदि रोग हो जाते हैं।

(७) **धूल.**—धूल 'कःपदार्थ' या सब से अधिक हीन कोटि का पदार्थ गिना जाता है। इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। परन्तु इसी धूल द्वारा हमें कमरों में सूर्यप्रकाश मिलता है, आकाश में भिन्न २ आह्लादकारक रंग और प्रकृतिचित्र दीखते हैं। आकाश का नीला रंग इसी कारण से है, ऐसा भी

किसी किसी का मत है। परन्तु यह धूल फुप्फुस में जा कर क्षयादि रोग और महामारियाँ फैलाती है।

निरुपयोगी गैसें.—प्रकृति के सदा परिवर्तनों के कारण भिन्न २ गैस उत्पन्न हो कर वायु में मिल जाती हैं, परन्तु अत्यन्त ही सूक्ष्म परिमाण में।

पुरातन काल में वायु एक बड़ी रहस्यपूर्ण और कुतूहल उत्पन्न करने वाली वस्तु रही है। भिन्न २ समय पर इस के बारे में बहुत से अन्वेषण किये गये और निम्नलिखित आश्चर्यजनक बातें सामने आईं।

भिन्न २ गैसें.—अम्लजन, नायट्रोजन, वाष्प, कार्बन–द्वयाम्लजिद और विरल गैस।

वायु की गैसों की उपयोगिता.—सम्पूर्णतया: सब गैसों का और विशेष कर कार्बन–द्वयाम्लजिद, ओज़ोन और हीलिअम् का उपयोग निश्चित हो गया।

गैसों का परिमाण.—वायु में भिन्न २ गैसों का परिमाण ऊँचाई के अनुसार न्यूनाधिक होता है, इस का पता लगाया गया है।

उष्णता परिमाण.—एक समय यह विचार था कि, हम जैसे २ ऊपर जायँ, वायु ठण्डी होगी, परन्तु आज उस के सर्वथा विपरीत सिद्ध हुआ है।

उपरोक्त विवेचन से मनुष्य–बस्ती के लिये कैसी वायु चाहिये यह सिद्ध हो गया। इस प्रकार हमारे यहाँ के समान, सौर्यमण्डल के अन्य ग्रहों पर मनुष्यों की बस्ती होना, वहाँ की वायु की स्थिति पर निर्भर है। अत: अन्य ग्रहों पर कैसी वायु है, इसे देखना पड़ेगा।

पृथ्वी और उस के पास के ग्रहों के वायुमान और जीवन में साम्य होने की सम्भावना.—अन्वेषणों के अनन्तर यह विचार हुआ, कि अन्य ग्रहों पर उन की परिकर्मण गति के अनुसार वायु रही होगी, और वहाँ का वायुमान पृथ्वी के वायुमान से सर्वथा भिन्न होना चाहिये। जब वायुमान में पृथक्ता है, तो वहाँ का जीवन भी पृथक् ही होगा।

पृथ्वी के भीतर रहने वाले विशेष, किन्तु भिन्न २ मर्यादित वेग से दौड़ने वाले तत्त्व, गैसों का गुरुत्त्वाकर्षण या आनुवंशिक–आकर्षण के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करने से सिद्ध होता है कि पृथ्वी के पृष्ठभाग से पृथक् हो जाने वाला प्रत्येक अणु या पदार्थ गुरुत्त्वाकर्षण के कारण वायु के साथ पुनः पृथ्वी पर लौट आता है। परन्तु यह नियम सब ग्रहों पर लागू नहीं। यह बात प्रत्येक ग्रह के गुरुत्त्व–आकर्षण के परिमाण और वहाँ की वायु के वेग पर ही निर्भर है। इस वायु के लौटने की क्रिया को 'कसौटी वेग' कहते हैं। यह वेग जब मर्यादा लाँघ जाता है, तो इस गैस का पुनः अपने ग्रह पर आना असम्भव हो जाता है। भिन्न २ ग्रहों की गैसों की पुनः लौट आने की सम्भावना निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होगी।

ग्रह	कसौटी वेग, प्रति सेकण्ड
पृथ्वी	६·९ मील
मंगल	३·१ ,,
बुध	२·२ ,,
चन्द्र	१·९ ,,

पुरातन काल में यह गैस जब बहुत तप्त थे, तो इन के उपरोक्त वेग भी अधिक होंगे, अतः बहुत से गैस इन ग्रहों से

छूट गये होंगे। पृथ्वी का अब उष्णतामान भी पुरातन काल के उष्णतामान से (जब यह सूर्य से पृथक् हुई) कम है। अतः उस समय उष्णता की अधिकता से बहुत सी गैसें पृथ्वी से पृथक् हुई होंगी, और वायु मान में परिवर्तन हुआ होगा।

इन दोनों कारणों से (अर्थात् वेग और सूर्य की उष्णता की कमी से) पृथ्वी की कक्षा (orbit) में फिरने वाले अन्य ग्रहों का वायुमान पूर्वावस्था से कम हो गया होगा। यदि पृथ्वी को मिलने वाली उष्णता को १०० भाग मानें, तो अन्य ग्रहों को सूर्य से मिलने वाली उष्णता का परिमाण निम्नलिखित होगा।

बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	गुरु	शनि	हर्षल	नेपच्यून
६६७·३,	१९१·२,	१००,	८३·१	३·७	१·१,	०·३,	०·१.

उपरोक्त बातों पर ध्यान देने से पृथ्वी जैसी उष्णता और वायुमान की सम्भावना शुक्र और मंगल पर ही है, परन्तु इन दोनों ग्रहों पर एक ही प्रकार की वायु वा उष्णता नहीं।

हमारी वायु का उष्णतामान घनत्व पर ही निर्भर है। शुक्र की वायु का घनत्व पृथ्वी की वायु से बहुत अधिक है, परन्तु मंगल पर की वायु कम घनशाली होगी। वस्तुतः यदि शुक्र पर वायु हो, तो वह अतिशय उष्ण होगी, क्योंकि एक तो शुक्र को सूर्यतेज दुगना समय मिलता है और दूसरे वहाँ की वायु का घनत्व अधिक है। यह दोनों कारण उष्णता की वृद्धि करने वाले हैं। अतः शुक्र पर हमारे यहाँ जैसी वायु की सम्भावना नहीं। परन्तु मंगल पर हमारे यहाँ जैसी वायु की अधिक सम्भावना है। स्थूलरूप से हम इस प्रकार कहेंगे।

(१) चन्द्र और बुध पर वायु सर्वथा नहीं होगी।

(२) गुरु, शनि, हर्षल और नेपच्यून पर वायु की सम्भावना है, परन्तु वह पृथ्वी की वायु से भिन्न प्रकार की होगी, यह किरण–विवरण (spectroscope) और परीक्षा से सिद्ध हुआ है।

उपरोक्त किरण–विवरण परीक्षा से मालूम होता है कि गुरु और शनि पर अमोनिया गैस का अस्तित्त्व होगा। हर्षल और नेपच्यून पर इस वायु का नाम तक भी नहीं मिलता; सम्भवतः वहाँ यह वायु जम गई होगी या पत्थर भी बन गये होंगे। गुरु और शनि पर अमोनिया के अनुसार मिथेन् गैस का भी अस्तित्त्व मालूम होता है। यदि यह बातें सच हैं तो युरॅनस् और नेपच्यून पर मिथेन्–युक्त वायु होगी। सूर्य से जैसे २ दूर जायें, वैसे २ हलके भार के तत्त्वों के स्थान पर गुरु भार के तत्त्वों की गैसों की वायु दिखाई देती है। पर इन बातों से हमें क्या? क्या इन गूढ़ प्रश्नों का कभी हल होगा? हाँ, होगा; आज नहीं तो कल अवश्य होगा।

पृथ्वी से इतर ग्रहों पर जीवन की सम्भावना.—पृथ्वी के आरम्भ में उस के पृष्ठ पर एक भी जीव का अस्तितत्व नहीं था। पृथ्वी की मूल गैसों में क्लोरिन और हायड्रोक्लोरिक जैसी प्रखर गैसों का समावेश था। पृथक्-अम्लजन का अभाव था। धीरे २ क्लोरिन और हायड्रोक्लोरिक ॲसिड की व्यवस्थित कमी हो कर उस स्थान पर अम्लजन आ गई। लगभग उसी समय प्राणी और बनस्पति उत्पन्न हुई। परन्तु जीव पानी, वायु या पृथ्वी से प्राप्त होने वाले पृथक् २ रासायनिक तत्त्वों से बना, या सभी की क्रिया प्रतिक्रिया से, यह कहना कठिन है।

अन्य ग्रहों पर हमारी वायु में होने वाले गैस सर्वथा नहीं हैं। जो कुछ वहाँ हैं भी, वे भी यहाँ से सर्वथा भिन्न हैं। अतः

हमारे यहाँ के जैसे जीवन की अन्य ग्रहों पर सम्भावना नहीं। जीवन एक रासायनिक रहस्य है। प्राणियों और बनस्पतियों को अनेक रासायनिक द्रव्यों का उपयोग करना पड़ता है, तो भी उन में मुख्य अन्न, पानी और वायु ही हैं। इन के अभाव में प्राणी और बनस्पति जीवित नहीं रह सकते। हमारा रक्त इस प्रकार का बना हुआ है कि वह केवल वायु के अम्लजन से ही शुद्ध हो सकता है। यदि एकदम हमारी वायु में परिवर्तन हो जाय और 'गुरु ' अर्थात् अमोनिया (इस से हमारा साँस घुटने लगता है) तथा मॅथन् हमारी वायु में फैल जायें, तो पृथ्वी के जीव नष्ट हो जायेंगे। अतः अनुमान होता है, कि अपने यहाँ जैसी वायु और कहीं नहीं है, इस लिये अपने यहाँ जैसे प्राणियों और वनस्पतियों की अन्य ग्रहों पर सम्भावना नहीं।

उपरोक्त विधान कुछ धोका दे सकता है, क्योंकि जीव की उत्पत्ति अभी एक रहस्य है। जब उत्पत्ति का कारण ही निश्चित नहीं तो उस का अमुक स्थान पर होना या न होना कैसे निश्चित हो सकता है? जीव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आजतक की उपलब्ध जानकारी अत्यन्त अपूर्ण है। अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि जैसे प्रत्येक वस्तु रासायनिक सम्मिश्रण से बनी है और उन में विशेष कार्बन, हायड्रोजन और अम्लजन जैसे तत्त्व अधिक दिखाई देते हैं, वैसे ही जीव भी इन तत्त्वों की विशेष उलझी हुई क्रिया, प्रतिक्रिया का ही परिणाम होगा। जहाँ उपरोक्त तत्त्वों की कमी है,वहाँ उन पर अवलम्बित जीवन की सम्भावना नहीं; और दूसरी बात यह है कि हम में और वनस्पतियों में उपस्थित जीवनमूल (प्रोटोप्लाज़म्) जैसे रासायनिक पदार्थ, जीवित प्राणी से पृथक् कर के किसी

भिन्न वायु में रखने से कितनी देर तक जीवित रह सकते हैं, यह कहना असम्भव है।

उपरोक्त सब बातों का सिंहावलोकन करने से यह सिद्ध होता है, कि जिस वायु में अमोनिया और मिथन् का परिमाण अधिक है और अम्लजन की कमी या अभाव है, वहाँ पृथ्वी जैसे जीवों की सम्भावना नहीं। अतः हमारी पृथ्वी के बिना और कहीं जीवन दिखाई नहीं देता।

मंगलाय नमः।

चर्म रंगने की कला

इस लेख के शीर्षक को पढ़ते ही बहुत से सनातनी लोगों को संकोच होगा। परन्तु विषय की उपयुक्तता पर ध्यान देकर और सनातनी लोगों को प्रणाम कर के निम्नलिखित जानकारी उपस्थित करता हूँ। त्वचा और चर्म का अर्थ भिन्न २ है। बिना कमाया चर्म शरीर का नैसर्गिक आच्छादन है, जिसे हम बहुधः त्वचा कहते हैं, वही कमायी हुई त्वचा चर्म कहलाती है। कई स्थानों पर चमड़ा कमाने का अर्थ चर्म रंगना लिया जाता है, क्योंकि बहुधः कमाते समय उपयोगी द्रव्यों से रंग चढ़ाया ही जाता है। हमारे यहाँ चर्म के सम्बन्ध में छूताछूत की विचित्र धारणाएँ हैं। पूर्वकाल में महर्षि स्वयं शिकार करते थे। शिकार खाने के बाद बचा हुआ चर्म आच्छादन के काम लाते थे। उस समय छूआछूत का भाव कहीं नहीं था। चर्म निश्शंक हो कर दैनिक व्यवहार के काम में आता था। हिरण जैसे जानवरों का चर्म कोमल होता है, अतः इसे ही अधिक प्रयोग में लाने की प्रथा थी। इन का चर्म ऋषि सम्मत होने से साधुसंत भी प्रयोग में लाने लगे, और बाघ का चर्म उत्तम और शुद्ध पूजा–आसन कहला कर काम में आने लगा।

मनुष्य की शक्ति और साधन जैसे २ बढ़ते गये, वैसे २ उस की रुचि भी बढ़ने लगी और स्वयं ही उसने कुछ बातें वर्ज्य कह कर छोड़ दीं। गोमांस इसी कोटि में आता है। धीरे २ ऐसे निषिद्ध मृत पदार्थों को छूना भी पाप समझा जाने लगा।

इस में एक और भी अधिकता आ गई। जैसे २ कार्य विभागों का प्रचार होता गया, वैसे २ कुछ कार्य उच्च श्रेणी के और कुछ नीच श्रेणी के गिने जाने लगे। जिन के पास शिकार करने का धैर्य और साधन नहीं था, उन को बड़े पशुओं के माँस की भूख मरे हुए जानवरों से शान्त करनी पड़ी। इन साहसहीन पुरुषों को बिरादरी ने बावला कह कर अपने से पृथक् कर दिया। इस रीति से एक तुच्छ और अछूत जाति बन गई, अर्थात् वे जिन २ वस्तुओं को छूते वा जिन २ धन्धों को करते थे, वे सब तुच्छ और अछूत माने जाने लगे। इस समाज बन्धन के कारण आज-तक हरिणादि का चर्म बचा रहा। आश्चर्य की बात यह है कि, यही अछूत पदार्थ, जो हमारे भीतर घृणा उत्पन्न करता है, यदि पाद–त्राण जैसी अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं में उस का रूप बदल दिया जाये, तो वह स्पृश्य बन जाता है और बिना झिझक दैनिक व्यवहार के काम में आता है। वस्तुतः पशुओं से उत्पन्न हुई ऊन और कृमियों से तय्यार हुआ रेशम अधिक अस्पृश्य माने जाने की आवश्यकता थी। पर पहनने के लिये रेशमी वस्त्र का ही विधान है। शास्त्रीजी महाराज अपनी पोथियाँ झाड़ने के लिये मोर के पंखों की चौरी का उपयोग करते हैं; किन्तु, यदि कहीं कबूतर की पूँछ के पंख घर में आ पड़ें तो भारी अनर्थ माना जाता है।

अथवा यह विचार करो कि सन्यासी की गेरुआ अलखी का मूलतः क्या रूप है। अनुसन्धान करने से यह मालूम होता है कि, पूर्व काल में सन्यासियों की अलखी कमाये हुए उत्तम चमड़े की होती थी। चमड़े को कमाते समय उस पर गेरुआ रंग चढ़ जाता है। अब इस अलखी में से चमड़ा निकल गया है, केवल गेरुआ रंग ही रह गया है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के मत के अनुसार

भी बिना कमाये हुए चमड़े को अस्पृश्य मानना कुछ तथ्य विहीन नहीं है। पर पूर्व काल में जिन कारणों से कच्चे चमड़े को अस्पृश्य माना जाता था आज के वैज्ञानिक उन्हीं कारणों से बिना कमाये हुए चमड़े को अस्पृश्य नहीं मानते। दोनों के कारण जुदे-जुदे हैं। कच्ची खाल पानी में भीगती है, गीली होती है, सड़ती है; और जीवजन्तुओं को आश्रय देती है। निदान रोगों को पैदा करने वाली हो जाती है। इसी लिये उस को बस्ती में न लाया जाय तो ही अच्छा है। परन्तु उस को कमा कर, सड़ने और सूखने का दोष दूर कर के, इच्छानुसार रंग कर शंका रहित हो कर यानी बिल्कुल शुद्ध अथवा छूत रहित मान कर इस्तेमाल करने में कोई हर्ज नहीं है। इतना होने पर भी बैठने के स्थान पर (क्योंकि हम लोग अधिकांशतः ज़मीन पर ही बैठते हैं) यदि जूते न लाये जायें तो स्वच्छता की दृष्टि से अच्छा है। फिर चाहे वह चम्पल हों या कीमती बूट हों। कारण यह है कि इस तरह की पाबंदी न लगाने से रास्ते की गंदगी कुछ न कुछ अंश में घर में भी चली आयेगी। और ऐसा होना स्वच्छता और नीरोगता की दृष्टि से अच्छा नहीं है। अच्छा अब यह देखना है कि मनुष्य ने कच्चे चमड़े के दोष किस किस तरह दूर किये और कमाया एवं रंगा हुआ चमड़ा तैयार करने में किस तरह प्रगति की। पूर्व काल से चले आने वाले इस काम के इतिहास को देखते हैं तो मालूम होता है कि यह कार्य तीन जातियों के लोग करते थे। और विदित होता है कि वही आज भी करते हैं। चमार (महार) मरे हुए पशुका चमड़ा काटते हैं। ढेड उसे कमाते हैं। और मोची उस की वस्तुएँ बनाते हैं। उस काल में यह श्रम विभाग उत्तम तत्त्वों के आधार पर किया गया था। उस समय यह मालूम

न था कि इस उद्योग की कुंजी क्या है । पूर्व काल में चमड़ा कमाने के सिलसिले में जिन वृक्षों की छाल का सत्व काम में लाया जाता था (या अब भी लाया जाता है) उन में प्राय: उपयोगी द्रव्य १–२ प्रतिशत ही होता था। कभी कभी ३०-४० प्रतिशत तक भी निकल आता था । परन्तु आज यह सत्व पृथक् किये हुए बेचे जाते हैं । अतः इन का प्रयोग अब अटकलपच्चू रीति से नहीं होता है। पूर्व काल में बड़े बड़े पशुओं का चमड़ा रंगने में ९ से लेकर १२ मास तक लग जाते थे। पुरानी विधियों का स्थान नये नये अन्वेषण लेते चले गये । आज कल, पुस्तकों की जिल्द बाँधने के लिये जो पतला चमड़ा काम में लाया जाता है, उस को २४ घंटों में भी कमाया जा सकता है। कहाँ किस चीज़ और विधि से काम लिया जाता है, यह जानना आवश्यक है। बने बनाये सत्व मिलने के कारण भारत में सत्व बनाने की कला और तत्सम्बंधी वृक्षों का ज्ञान नष्ट होता चला गया। इन सत्वों के लिये आज हमें विदेशों का मुहताज बनना पड़ता है। हमारे यहाँ हरड़ का सत्व सर्वमान्य है। इस के सम्बन्ध में अनेक संशोधन हुए है। पर केवल हरड़ की छाल से ही काम नहीं लिया जाता है। बबूल, साईनादि अनेक वृक्षों की छाल का भी इस काम में उपयोग हो सकता है। पर इस ओर आजतक किसी ने भूलकर भी दृष्टिपात नहीं किया है।

पूर्वेतिहास काल से ही, जब कि मनुष्य जंगली स्थिति में 'कन्द मूल फल' खा कर अपना जीवन निर्वाह करता था, शीतोष्ण से निज शरीर की रक्षा करने के लिये उसे कुछ न कुछ उपाय तो करने ही पड़ते होंगे। कारण यह है कि मनुष्य के शरीर पर बाल बहुत ही कम हैं और इस विषय में वह सर्वथा उपयोग

शून्य हैं। अतः शरीराच्छादन के लिये पशुओं की खाल होनी ही चाहिये। और अनुसन्धान से यह सिद्ध होता है कि वास्तव में ऐसा ही होता था। अंगरेज़ी भाषा में प्रकाशित (Caveman) गुफा के अधिवासी नामक पुस्तक के चित्र देखिये। अपने यहाँ यज्ञोपवीत संस्कार के समय मूँज की रस्सी और मृगचर्म धारण की विधि देखिये। दोनों बातें इस एक ही सत्य को सिद्ध करती हैं। दूसरा कदम चर्म के आसन और पादत्राण बनाने में उठाया गया। तदनन्तर और भी आगे, मनुष्य जैसे जैसे बड़े बड़े पशुओं का शिकार करने लगा वैसे-वैसे ही चर्म का उपयोग बढ़ता चला गया। संक्षेप में कहा जाय तो यही कहना होगा कि चर्म की उपयोगिता, मनुष्य को अति प्राचीन काल से मालूम थी। इस उपयुक्त वस्तु की पूर्व काल में क्या स्थिति थी और अबतक उस में क्या क्या संशोधन हुए, इस का इतिहास मनोरंजक है। यह अति उपयोगी वस्तु है और किस तरह निर्माण की जाती है, यह जानना क्या आवश्यक नहीं है?

स्पष्ट है कि पशुओं के चर्म का मूल्य (उपयोगीपन) मनुष्य को अनादि काल से मालूम है। इसका सा टिकाऊ और शीतोष्ण एवं वर्षा निवारण का साधन उसे और कोई दूसरा मालूम न था। वल्कल वसन संस्कृती के बाद का दूसरा दर्जा है। चर्म उपयोगी वस्तु है यह बात भली भांति मालूम हो चुकी थी तो भी उस काल में यह बिल्कुल मालूम न था कि उस को अधिक दिन तक सुरक्षित रखने के लिये किस तरह टिकाऊ बनाया जाय! वे तो चर्म को यों का यों ही, केवल सुखा कर व्यवहार में लाते थे। इस तरह केवल सुखाकर काम में लाया गया चर्म कुछ दिन पश्चात् सूखकर खडंग हो जाता था और शरीर पर धारण करने में अतिशय कष्टप्रद होता था। इस पर यह बात ध्यान में आई कि

जिस तरह शरीर पर तैल मर्दन करने से हमारी त्वचा नर्म होती है उसी तरह दूसरे चर्म पर तैल मला जायेगा तो वह भी मुलायम होगा। प्रयोग कर के देखा गया तो यही हुआ। चर्म को कमाने की ओर यह पहला क़दम था। यह कृति आज की तिथि तक भी प्रचलित है। चर्म को कमाने की इस विधि का इलियड नामक अति प्राचीन काव्य के रचयिता होमर ने भी, उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थ में चर्बी लगा कर बैल के चर्म को कमाने की तरकीब वर्णित है। इसी प्रकार मनुस्मृति में लिखा है कि तिल का तैल लगा कर चर्म को कमाया जाय। एस्किमो लोग चमड़े पर मछली की चर्बी लगा कर आज तक उस को चबाचबाकर तैलसिक्त कोमल बनाते हैं। इसी विधि को, सुधरे हुए रूप में, शेमवा चमड़ा तैयार करते समय, आज भी काम में लाया जाता है।

चर्म शुष्क होगा तो तैल अधिक खपेगा। जब यह बात मालूम हुई तो उसे आग पर तपा कर या टांग कर सुखाने की प्रथा पड़ी। इस तरह से सुखाया हुआ चर्म अधिक सुन्दर और टिकाऊ होता है। धूम्र में कीटाणुँ–जन्तु नाशक गुण है, यह बात तो कहने की आवश्यकता ही नहीं है। ऑफ्रिका से आने वाले चर्मों को देखकर यह अनुमान होता है कि आज तक यही रीति वहाँ जारी होगी।

जब यह अनुभव हुआ कि, चर्म को सुखा कर तैल लगा कर नर्म करने के स्थान पर धो कर स्वच्छ कर लेने से तैल खूब चढ़ता है तो उसे पानी से स्वच्छ कर लेने की रीति चल पड़ी। पानी के जिस पात्र में वृक्ष से झड़े हुए पत्ते पड़े हों, उस पानी में डुबो कर सुखाया हुआ चर्म अधिक टिकाऊ होता है, यह बात इस के बाद सिद्ध हुई। इस बात से यह अनुमान लगाया गया कि यह गुण

वृक्षों के पत्तों और उन की छालों के सत्व में है । उपरोक्त बात निश्चित हो जाने पर वृक्षों की छालों के काढ़ों के प्रयोग से चर्म को कमाना शुरू हुआ । वृक्षों की छाल के काढ़ों के प्रयोग से चर्म कमाने की रीति बहुत पुरानी है । भारत वर्ष में तो यह बात ईसूवी सन से ३००० वर्ष पूर्व भी मालूम थी यह बात खण्डहरों अथवा भूस्तल में दबे हुए शहरों की खुदाई के समय, अन्य वस्तुओं के साथ मिली हुई चमड़े की वस्तुओं से प्रकट होती है। इसी तरह आज यह भी स्पष्ट है कि ईसूवी सन से १०० पूर्व तक भारत में कमाया हुआ चर्म चीन, मिश्र तथा यूरोप के विभिन्न देशों को जाता था । इसी तरह चर्म रंगने की क्रिया भी हमें अति पुरातन काल से ज्ञात है । हमारे यहाँ का रंगा हुआ चर्म किसी समय सारे संसार में प्रसिद्ध था । हमारे यहाँ की तरह चमकदार लाललाल जोड़ा (जूता) और पुराणादि पुस्तकों के रंगीन पुट्ठे बनाना अन्य देश वासियों को अवगत न था । अधिक क्या, आज भी हमारे देश के कुछ स्थानों के कमाये हुए चर्म को यूरोप के व्यापारी अधिक पसंद करते हैं । यह चर्म एक विशिष्ट क्रिया से कमाये जाते हैं, और यह क्रिया आज तक भारत वर्ष से बाहर वालों को मालूम नहीं है ।

चर्म बनाने की क्रिया यद्यपि भारतीय है, तथापि वह निम्नश्रेणी और निकृष्ट संस्कृति के लोगों के हाथों में है । अनादि काल से उन्हीं के पास रहने के कारण इस में फिर सुधार नहीं हुआ और यह कला जैसी की तैसी ही बनी रही । एक मात्र यूरोप आगे निकल गया । यूरोप ने इस कला में अधिक श्रम किया । आज यूरोप निवासियों में विद्या प्रचार भी अधिक है और वे व्यापार कुशल भी हैं, इस लिये उन्होंने इस दिशा में आज तक सपाटे से उन्नति

की है। उन्होंने इस विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया और विशेष विधियों एवं द्रव्यों का अन्वेषण कर लिया। संक्षेपतः, इन दिनों यूरोप में प्रचलित चमड़ा रंगने की कला एकदम आधुनिक है। इतना होने पर भी, यूरोप में भी, शिक्षित लोग इस में क्वचित ही प्रवेश करते हैं, क्योंकि यह व्यवसाय गंदा है। इसी कारण से यूरोप में, सब साधन सुलभ रहते हुए भी, इस कला की जितनी चाहिये थी उतनी प्रगति अधिक दिनों तक नहीं हुई। इस समय हम जो कुछ देखते हैं वह उन्नति केवल पचास वर्ष की है। कई बातें आज भी व्यवस्थित रूप में नहीं हैं, जिन में सुधार की आवश्यकता है। इस उद्योग के मुख्य सुधारक एच. आर. प्रॉक्टर हैं। इन्हों ने ही इस को वैज्ञानिक रूप दिया। प्रथम केवल वनस्पतियों से निर्मित द्रव्यों की छान-बीन की गई। उन के गुणधर्म और कार्यक्षेत्र निश्चित किये गए। फिर, इस तरह, सेन्द्रिय द्रव्यों से कमाने की रीति मालूम कर लेने के अनन्तर खनिज द्रव्यों से चर्म कमाने की सम्भावना की जाँच की गई। और इस तरह यह नई रीति भी उपयोग में लाई गई। इस तरह से कमाने की रीति बहुत पुरानी है। सर्व प्रथम स्फुटिका (फटकरी) का प्रयोग होता था। इस से सब से अधिक मृदु चर्म तैयार होता था, जिस का उपयोग स्त्रियों के बूट और दस्ताने बनाने में होता था। भारत में भी यह रीति पुरातन काल से ज्ञात थी, परन्तु इस का उपयोग केवल तब ही होता था, जब बालों के समेत चर्म को कमाना होता था। फटकरी से कमाये हुए चर्म टिकाऊ नहीं होते, और कभी-कभी, विशेषतः वर्षाऋतु में, वे ख़राब होने लगते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिये बहुत प्रयत्न किये गए। आजकल फटकरी के स्थानपर अन्य प्रकार के सार व्यवहृत कर के उत्तम और टिकाऊ चर्म तय्यार किये जाते हैं। ये कृतियाँ यद्यपि भिन्न भिन्न

हैं तथापि एक दूसरे की पोषक हैं । इस लिये अनेक बार एक ही चर्म पर दोनों का एक ही समय उपयोग किया जाता है ।

चर्म कमाने या रँगने का अर्थ.—चर्म दीखने में सुन्दर, स्पर्श में मृदु, कोमल, हलका, टिकाऊ और आरोग्य की दृष्टि से स्वच्छ होना चाहिये । यह गुण चर्म पर भिन्न २ कृतियों से लाये जाते हैं । साधारणतय: चर्म क्रमानुसार कमाया जाता है । इस में त्वचा से लोम निकालना, त्वचा में भिन्न २ गुण उत्पन्न करना और रंगना स्थूल विधियाँ हैं । यह निम्नलिखित क्रम से होती हैं ।

'कच्चे' चर्म.—बाज़ार में आने वाले कच्चे चर्म भिन्न २ जाति के होते हैं.—

(१) पशुओं की त्वचा उतार कर जैसी की तैसी सुखाई हुई होती है ।

(२) गीले चर्म को सड़ान से बचाने के लिये उस का मांस धोकर पुन: नमक के पानी से धोते हैं । बहुधः इस के अनन्तर सुखाने की प्रथा है ।

(३) कभी २ चर्म आधा सूख जाने पर उस पर संखिया जैसे जन्तु नाशक द्रव्यों की पुट देते हैं और उस के अनन्तर वह पूर्णतयः सुखाया जाता है ।

चर्म कमाने की तैयारी.—चर्म के कमाने के द्रव्यों को शोषण के योग्य बनाना ।

कच्चे चर्म को पहले ठण्डे पानी में भिगोते हैं । ऐसा करने से चर्म का माँस, रक्त, क्षारादि धुल कर साफ हो जाता है । और वह चर्म ताज़े चर्म के अनुसार गीला हो जाता है । इस प्रकार चर्म के रन्ध्रों से पानी के द्वारा औषध सहज भीतर पहुँचाए जा

सकते हैं। नमक और सँखिया लगाया हुआ चर्म शीघ्र भीगता है। परन्तु केवल सुखाने के लिये अधिक समय लगता है, विशेषतः धूप में सुखाने से! क्योंकि धूप में चर्म की वसा पिघल कर उस के पृष्ठ भाग पर जम जाती है। जिस से पानी को भीतर जाने में अधिक समय लगता है। इतने काल में चर्म के अन्दर का भाग सड़ जाता है। उसे बचाने के लिये वसा पिघलाने वाले क्षार पानी में मिलाते हैं। इस कार्य के लिये बहुधः सोडियम सल्फाईड प्रयोग में आता है। यह जन्तुनाशक भी है, अतः इस से दो कार्य सिद्ध होते हैं।

(४) **बाल निकालना और चर्म फुलाना.**—फुलाया हुआ चर्म क्षार और सत्व शीघ्र शोषण करता है। चर्म तैयार होने के बाद उस के लोम निकालना, बचा हुआ माँस साफ करना और फुलाना होता है। पूर्व काल में इस कार्य के लिये चर्म १०—१५ दिन चूने के पानी में रख देते थे। परन्तु आजकल यही कार्य सोडिअम सल्फाईड से लिया जाता है। अब १५ दिन का कार्य तीन दिन में ही हो जाता है। इस चर्म में छाल का रंग भली प्रकार नहीं आता। चूने के प्रयोग से निम्नलिखित लाभ होते हैं।

(अ) बाल और उन के मूल आसानी से छूट जाते हैं!

(आ) बचा हुआ माँस भी चमड़े से जल्दी पृथक् हो जाता है और चर्म साफ करने में परिश्रम नहीं लगता।

(इ) त्वचा के भीतर की वसा धुल कर निकल जाती है, क्योंकि चूने के साथ वसा मिल कर साबुन बन जाता है और स्निग्धता नष्ट हो जाती है। ऐसा चर्म कमाने के लिये उपयोगी द्रव्य भली प्रकार शोषण करता है।

(ई) चर्म के तन्तु खुल जाते हैं और वह अधिक विच्छिन्न हो जाती है, जो कमाने के द्रव्य और सत्व शीघ्र शोषण करती है।

(क) **बाल निकालना.**—थोड़े परिमाण में चूने का प्रयोग करने से बाल अपनी जड़ों से पृथक् हो जाते हैं। १०-१५ प्रतिशत चूना डाल कर उस पानी में १० दिन तक चर्म को भिगो रखते हैं। चर्म प्रतिदिन एक बार ऊपर नीचे किया जाता है। दिन पूरे होने के बाद वह बाहिर निकाला जाता है और बाल खुरच दिये जाते हैं।

(ख) **चिपटा हुआ मांस निकालना.**—वह बाल निकाला हुआ चर्म उपरोक्त पानी में ४-६ दिन तक रखते हैं। समय पूरा होने के अनन्तर मांस खुरच कर साफ कर दिया जाता है।

(५) उपरोक्त रीति से यदि चर्म शुद्ध हो जाता है, तो भी उस में चूना, क्षार रह जाता है, जो अगली कृति के लिये विघातक है, अतः उसे दूर करना आवश्यक है। यह क्षार, अम्ल से नष्ट की जाती है। इस के लिये भिन्न २ जाति के अम्ल उपयोग में आते हैं। कोई गेहूँ का ख़मीर, कोई चने के पत्तों का ख़मीर, तो कोई ॲसेटिक ॲसिड या बोरकाम्ल काम में लाते हैं। अम्लता, सब में होने के कारण, जो सुविधा-जनक हो वही प्रयोग कर लिया जाता है।

इस प्रकार का तय्यार किया हुआ चर्म अब कमाने योग्य बनता है। अतः इस पर वैसे द्रव्यों की वर्षा की जाती है। चर्म की जाति, उपयोग, चढ़ाये जाने वाले रँग के अनुसार, कमाने के लिये उपयोगी वस्तुओं का तथा उन के परिमाण और काल में भेद किया जाता है। इस प्रकार कमाये हुए चर्म का गुण पानी का शोषण न करना, सूखा रहना, कभी न सड़ना, लचकता, मृदुता और टिकाऊ है।

(६) उपरोक्त रीति से बनाये चर्म को धोकर, निचोड़ कर, सुखा देने से सिलवट पड़ जाती हैं । इस दोष को दूर करने के लिये गीले चर्म को एक चौखट पर खींच कर तान देते हैं और सुखा लेते हैं । उसे मृदु रखने के लिये तैल का पुट चढ़ा देते हैं । अतः वह मन्द गति से सूख कर टिकाऊ बन जाता है ।

(७) इस प्रकार कमाये चर्म का रंग एक ही नहीं होता, अपितु वह कमाने के लिये उपयोगी द्रव्यों के रंगों पर निर्भर है । उदाहरणार्थ तरवड़ी की छाल के सत्वों से पीतश्वेत, ऐन से गुड़ जैसा गेरूआ, बँबूल से रक्तपीत, स्फुटिका से श्वेत, क्रोमॲलम् से श्वेत हरित और मच्छली के तैल से पीत रंग चढ़ता है । इच्छानुसार रंग देना एक बड़ी कला है । इस रीति से कमाये चर्म पर इच्छानुसार रंग खिलाना सदा साध्य नहीं । अतः इच्छानुसार रंग लाने के लिये चर्म कमाने के रासायनिक द्रव्यों में और सत्वों में फेर–बदल करना पड़ता है । अधिक उपयोगी चर्म पर जो रंग चढ़ाये जाते हैं वे ऊन या रेशम रंगने के लिये व्यवहृत रंगों की श्रेणी के होते हैं । जिस रंग से रेशम रंगा जाता है उस से चर्म को रंगना कुछ भी कठिन नहीं हैं ।

विलायती चमड़े से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है । वह वहाँ पर व्यवहृत होने वाले मछली के तेल और चर्बी से पैदा होती है । चर्म के गुण या अवगुण में कुछ फ़र्क नहीं होता । पर विलायती ही उत्तम होते हैं, यह समझ कर लोग ' ओक टॅण्ड ' चमड़े को ही अधिक पसन्द करते हैं । हमारे देश में ओक वृक्ष का नाम निशान न होते हुए भी, खाली मछली का तेल व्यवहृत कर के वैसी ही गंध चमड़े में पैदा की जाती है । रूपगुण में

अन्तर न होने के कारण यह समझना भी कठिन होता है कि चर्म वास्तव में विलायती ही है या नहीं।

स्वाभाविक रूप में चढ़े हुए रंग जुदे-जुदे हों, यह बात नहीं है। अतः वस्त्रों के रंगने में उपयोग में आने वाले रंगों की भांति चमड़े को रंगने के काम में आने वाले रंग भी चार प्रकार के होते हैं। ऑसिड, बेसिक, डायरेक्ट और सल्फ़र; यह चारों रंग एक ही जाति के चर्म पर समान रूप से नहीं चढ़ते। अतः रंग चढ़ाना कमाने के रासायनिक द्रव्य पर निर्भर करता है। ऑसिड वाले रंग सब प्रकार के चमड़ों पर एक समान ही खिलते हैं। पर यह रंग इतने चटकीले नहीं होते जितने बेसिक रंग होते हैं। ऑसिड रंग साल की छाल से कमाये हुए अथवा क्रोम ॲलम से कमाये हुए चर्म पर एक सी चटक से खिलते हैं। इन में कहीं गहरा कहीं हलका रंग भी नहीं रहता और धब्बे भी नहीं पड़ते। बेसिक रंग जहाँ साल की छाल से कमाये हुए चमड़े पर अधिक चमक देता है, वहाँ वह सफ़ाई के साथ सब जगह समानता से नहीं चढ़ता। उस में छापे और धब्बे पड़ जाते हैं। ऑसिड रंग में एक और गुण भी है। इस से रंगा हुआ चर्म किसी भी प्रकाश में एक समान रंग का ही नज़र आयगा। परन्तु बेसिक रंगों में यह बात नहीं है। बेसिक रंग स्वल्प परिमाण में व्यवहृत होते हों तो ही उन में यह गुण बना रहता है। अतः भिन्न २ होने पर, चर्म को चमकीला, आकर्षक और साफ़ बनाने के लिये और सब परिमाण के प्रकाश में एक सी झलक लाने के लिये दोनों प्रकार के रंग एक साथ चढ़ाये जाते हैं। एक के ऊपर एक रंग चढ़ाने की यह रीति, दोनों के सम्मिश्रण से अतिशय चमक पैदा कर देती है। सल्फ़र-रंग शामवॉय चमड़े पर अधिक फलप्रद होता है। और बहुधः इसी चमड़े पर व्यवहृत होता है।

चमड़े पर रंग चढ़ाने के दो तीन प्रकार हैं। चमड़े के दोनों पृष्ठों को पृथक् २ रंगना पड़ता है। अतः चमड़े के बहुधः दर्शनीय भाग को ही रंगने की परिपाटी है, जो तूलिका (brush) से लगाया जाता है। परन्तु तूलिका से रंग साफ़ नहीं लगता। इस से बहुधः गाढ़ी रेखाएँ दीखने लगती हैं। इस का प्रतिकार करने के लिये अब फ़व्वारे से रंगने की नयी रीति चली है। इस से रंग बिल्कुल साफ़ चढता है। दोनों ओर से रंगने के लिये सारा चमड़ा डुबा कर रंग दिया जाता है।

रंगीन चमड़े को साफ़ और रंग खिलाने के लिये एक क्रिया और करनी पड़ती है। एक विशेष लेसदार मिश्रण उस पर मला जाता है। यह पदार्थ श्वेतमिट्टी, सरेस और खट्टे दूध की साँख (cassein) मिला कर, वस्त्र से छान कर, तय्यार किया जाता है। श्वेत मिट्टी से चर्म के छिद्र और खोखलापन दूर हो जाता है। दूध की साँख से एक विशेष द्युति आ जाती है, और सरेस से सब द्रव्य एक जीव हो कर चमड़े से चिपक जाते हैं। और भी कई मिश्रण हैं, परन्तु सब से यही उत्तम है। यह लेसदार पदार्थ चढ़ाने के बाद उसे चमकाने के लिये और मला जाता है। पुरातन काल में गोल और समतल पत्थर इस काम में आता था। अब यह कार्य यन्त्र से किया जाता है। इस से चमड़े में विशेष चमक आ जाती है। इस चमड़े को 'पेटन्टलेदर' कहते हैं। इस उपरोक्त रीति में, थोड़ा आवश्यक, फेर–फार कर के मिलों में काम आने वाले पट्टे, पादत्राण (जूतों) के तले, ग्लेज़किड और स्वीड चमड़े तय्यार किये जाते हैं।

इस प्रकार क्रम–क्रम से चमड़े को एक के बाद दूसरा गुण मिलता है। तब, सर्व–गुण–सम्पन्न हो कर चमड़ा बाज़ार में आता

है। इस उपरोक्त विवेचन का यह अर्थ न समझ लेना चाहिये कि केवल कुछ विशिष्ट पशुओं का चमड़ा ही रंगा जाता है। चूहों और छछूंदरों से लेकर मनुष्य पर्यन्त किसी भी प्राणधारी जीव का चमड़ा रंगा जा सकता है। साँप, गोह, चूहे, लौमड़ी, कुत्ते इत्यादि के कमाये हुए चमड़े (और अनेक बार झबरी के चमड़े भी) श्रीमन्तों की स्त्रियों की गर्दनों, उन के कन्धों और उन की कमरों (कटियों) की शोभा बढ़ाते नज़र आते हैं।

बाज़ार में आने वाले चमड़ों में विशेषतः दो जाति के चमड़ों की तुलना करने पर यह बात सहज ही समझ में आजायगी कि विशेष उपयोग के लिये किस चमड़े को काम में लाना चाहिये। क्रोम ॲलम से कमाये हुए चमड़े शीघ्र तय्यार होते हैं। इसी लिये सस्ते भी रहते हैं। इसी प्रकार से वह छालों के सत्वों से कमाये गये चमड़े से अधिक मुलायम, दृढ और पानी में विकृत न होने वाले होते हैं। पर वह पानी पीने वाले नहीं होते। इस गुण के कारण, यदि उन को जूते के तले में लगाया जाता है, तो जूता गीली भूमि पर फिसल जाता है। अतः इस काम के लिये इस प्रकार के चमड़े अनुपयुक्त होते हैं। पर बाह्यतः तथा अन्य प्रकार की वस्तुओं के लिये इस से उत्तम दूसरा चमड़ा नहीं है। इस चमड़े के पानी न पीने के गुण के कारण जूते की सूरत विकृत नहीं होती। इसी भांति क्रोम चर्म उष्णता का भी अधिक मुकाबिला करता है। अतः मिल–मशीनरी के पट्टे आदि के काम के लिये इस से उत्तम दूसरे प्रकार का चमड़ा नहीं होता; इतना ही नहीं क्रोमचर्म, छालों के तत्त्वों से कमाये हुए चर्मों की तरह घर्षण से घचड़–पचड़ नहीं होते। अतः यह वाशर (washer) में चकती के काम में भी लाये जाते हैं।

जिस तरह क्रोम चर्म के प्रयोग ने इस उद्योग में भारी फेर–फार कर दिया है उसी तरह कमाने की विधि में भी पुष्कल संशोधन हुआ है।

आज यह सिद्ध हुआ है कि, कमाने में पानी के साथ सम्बन्ध होने से चर्म में और सत्वों के पानी में भिन्न २ सूक्ष्म जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। इन में विशेष जन्तु चर्म को जालीदार बनाने में उपयोगी हैं, शेष उलटे अपकारक हैं। प्रत्येक जाति के जन्तुओं के लिये एक विशेष उष्णता और अम्लत्व आवश्यक है। जन्तु सिद्ध क्रिया चमड़े में अधिक गुण–मृदुत्व लाने में उपयोगी है। अतः ये जन्तु कबूतर, कुत्ता आदि प्राणियों की विष्ठा में होने के कारण उन की विष्ठा उपयोग में आती है। विष्ठा प्रयोग में न ला कर जन्तुओं का चूर्ण तैयार करने से कार्य अधिक सुकर होगा, क्यों कि ये विष्ठाएँ भिगो कर इच्छानुसार जन्तु तैयार करने में बहुत समय लगता है। यह सब प्रयोग रसायन–शास्त्र सिद्ध हैं, अनपढ़ लोगों को साध्य नहीं हैं। यह बात पेटेंट् लेदर के सम्बन्ध में है। आज कल बहुत सा 'क्रोम लेदर' और लगभग सारा 'पेटन्ट लेदर' विदेशों से आता है। पर भारी आश्चर्य की बात यह है कि, भारत से कमाये चर्म की निर्यात बहुत हो कर भी कई प्रकार के वही चर्म विशेष रूप धारण कर के पुनः भारत लौटाये जाते हैं। यह कौन कह सकेगा कि यह धन्धा यहाँ नहीं हो सकता?

उपरोक्त विवेचन से यह प्रतीत होगा कि रसायन–शास्त्र पारंगत मनुष्यों के ध्यान देने से इस धन्धे में बहुत क्रान्ति हो सकती है। इस में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है। क्रोम-पद्धति का तो आरंभ होने से रसायन–शास्त्र जाने बिना कार्य

करना सर्वथा कठिन हो गया है, क्यों कि पग २ पर सब क्रियाएँ रासायनिक तत्वों से करनी पड़ती हैं। यह स्पष्ट ही है, कि जब तक अच्छे पढ़े लिखे लोग इस व्यवसाय की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक अच्छा चमड़ा बड़े परिमाण में तैयार नहीं होगा, और सदा हमें दूसरों का मुख देखना पड़ेगा। यह धन्धा नीच नहीं। पर विज्ञान-सिद्ध होने के कारण, इस कार्य को वैज्ञानिकों के बिना दूसरे भली प्रकार नहीं कर सकेंगे।

---o---

शब्द सूची